हिन्दी साहित्य में देवी पूजा के विविध रूप : निराला के विशेष संदर्भ में

र्मा

हिन्दी साहित्य में देवी-पूजा के विविध रूप : निराला के विशेष संदर्भ में

डॉ० परमेश्वरी शर्मा

युवा हिन्दी लेखक संघ, जम्मू



हिन्दी साहित्य में देवी पूजा के विविध रूप :
निराला के विशेष संदर्भ में

युवा हिन्दी लेखक संघ, ढक्की सराजां, जम्मू द्वारा प्रकाशित । रोहिणी प्रिंटर्स जालंधर द्वारा मुद्रित । प्रथम संस्करण मार्च, 1993 ।

मूल्य : साठ रुपए ।

Hindi Sahitya Mein Devi Puja Ke Vivid Roop, Nirala Ke Vishesh Sandrabh Mein By Dr. Parmeshwari Sharma.

Price Rs. 60/-

विषय-सूची

प्राक्कथन

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के समस्त कार्य-व्यापार एक ही शक्ति द्वारा परिचालित हैं। यह शक्ति प्रत्यक्षतः दृष्टिगोचर न होने पर भी परोक्ष रूप से सर्वत्र परिव्याप्त है। विश्व-व्यापी इस शक्ति का रूपायन कहीं तो पुरुष (ब्रह्म) के रूप में हुआ है और कहीं नारी (चित्त शक्ति) के रूप में। साधना के मार्ग पर अग्रसर होकर ही व्यक्ति इस रहस्यमयी शक्ति का प्रत्यक्ष दर्शन कर सकता है। रुचि विभिन्नता के कारण समस्त प्राणी इस अनिर्वचनीय शक्ति को सदाशिव, महाविष्णु महाशक्ति, गणेश इत्यादि विभिन्न रूपों एवं विधियों से पूजते हैं किन्तु सम्पूर्ण विश्व-प्राणियों के लिए मातृ भाव की महिमा ही विशेष है क्योंकि संसार में पदार्पण करते ही शिशु का प्रथम सान्निध्य "मां" से ही होता है।

समस्त आगमतन्त्र में नारी रूपा इसी शक्ति को देवी मां के रूप में परिकल्पित किया गया है। मेरे शोध का विषय है "हिन्दी साहित्य में देवी-पूजा के विविध रूप : निराला के विशेष संदर्भ में"। यह विषय नितान्त मौलिक है क्योंकि इस से पूर्व हिन्दी साहित्य में देवी पूजा सम्बन्धी स्वतन्त्र रूप से कोई शोध कार्य नहीं हुआ है और न ही निराला साहित्य का अध्ययन इस आधार पर हुआ है। वैसे तो निराला पर बहुत शोध-कार्य हुआ है और "राम की शक्ति-पूजा" को लेकर अनेक विद्वानों ने उनकी शक्ति सम्बन्धी अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया है किन्तु निराला की शक्ति विषयक अवधारणा उन परिकल्पनाओं से भिन्न अर्थ रखती है जो समस्त आगम तन्त्रों और शास्त्रों में वर्णित है। निराला की प्रमुख रचना "राम की शक्ति-पूजा" में उनका उद्देश्य धार्मिक या साम्प्रदायिक प्रचार न होकर राष्ट्रीय शक्ति के उद्बोधन की परिकल्पना है जो व्यक्ति-व्यक्ति के अन्तर्मन में प्रसुप्त है, आवश्यकता है तो केवल उसके उद्बोधन की।

विषय निर्धारण के समय वैष्णों देवी श्राईन बोर्ड के सदस्यों तथा हिन्दी के कुछ विद्वानों की यह मान्यता थी कि निराला साहित्य में वैष्णो देवी का रूप ही व्याख्यायित है। जम्मू प्रान्त में स्थित यह देवी तीन पिण्डियों (महासरस्वती, महालक्ष्मी, महाकाली) के रूप में पूज्य है अतः "राम की शक्ति-पूजा" में वर्णित देवी का समन्वित रूप भी यही आधार लिये हुए है किन्तु निराला पर स्वामी सारदानन्द, विवेकानन्द और रामकृष्ण परमहंस का प्रभाव विशेष रूप से रहा है। उक्त विभूतियां यद्यपि शक्ति की

उपासक थीं किन्तु उनकी शक्ति-उपासना व्यक्ति की आन्तरिक शक्ति के प्रारूप को व्यक्त करती थी। निराला की "शक्ति-पूजा" चूंकि राष्ट्र की परिस्थितियों की मांग थी इसलिए उन्होंने बल, सम्पत्ति और ज्ञान की समन्वित शक्ति दुर्गा की प्रतीकात्मक व्याख्या की और हठयोग उस शक्ति की साधना का दुर्गम साधन के प्रतीक रूप में प्रतिपादित है। दुर्गा के जिस रूप का आह्वान निराला ने किया है वह जम्मू प्रदेश में स्थित वैष्णो देवी का प्रकल्पित रूप न होकर ज्ञान, सम्पत्ति और बल के संयुक्त रूप की कल्पना है। यही रूप आक्रान्ताओं से राष्ट्र को मुक्त करा सकता है।

सम्पूर्ण शोध कार्य को अध्ययन की सुविधा के लिए चार अध्यायों में विभाजित किया गया है। पहला अध्याय है—"देव" की प्रत्यक्ष शक्ति "देवी"। इस अध्याय में विविध व्याख्यायों के आधार पर देवी शक्ति के उद्भव की विवेचना की गई है और उसका स्वरूप निर्धारित किया गया है।

"देवी पूजा—उद्भव और विकास" दूसरा अध्याय है। इस में देवी-पूजा के पारम्परिक स्वरूप की व्याख्या करते हुए उसके आधुनिक स्वरूप की चर्चा की गई है।

तीसरा अध्याय "हिन्दी कवियों की देवी परिकल्पना" है जिसे दो उपभागों में विभाजित किया गया है। (1) आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी साहित्य में देवी परिकल्पना, तथा (2) आधुनिक काल के हिन्दी साहित्य में देवी परिकल्पना। यहां यह स्पष्ट कर देना अनुचित न होगा कि आधुनिक कालीन साहित्य के अन्तर्गत निराला युगीन साहित्य तक ही यह शोध कार्य सीमित रहा है क्योंकि उस से बाद के साहित्य में प्रगतिशील तत्व इतने सक्रिय हो उठे थे कि आध्यात्मिक प्रवृत्ति के लिए हिन्दी साहित्य में कोई स्थान नहीं रहा। निराला से बाद के साहित्य में हमें कोई ऐसी रचना नहीं मिलती जिस में देवी सम्बन्धी विचार हो।

शोध-प्रबन्ध का चौथा अध्याय—"निराला साहित्य में देवी परिकल्पना" है। यह अध्याय भी दो उपभागों में विभक्त किया गया है।

अन्त में परिशिष्ट में सहायक पुस्तकों तथा आलोच्य ग्रन्थों की सूची संलग्न है।

यह शोध प्रबन्ध जम्मू-कश्मीर राज्य के भूतपूर्व राज्यपाल श्री जगमोहन जी की सद्प्रेरणा का परिणाम है। वे मेरे आभार के पात्र हैं क्योंकि उनके अथक प्रयासों के कारण ही वैष्णों देवी स्थापना बोर्ड की धनराशि का कुछ अंश परियोजना में लगाया गया।

मैं जम्मू विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति एवं हिन्दी विभाग के अध्यक्ष के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन अपना परम कर्त्तव्य समझती हूं जिन्होंने उक्त शोध कार्य हेतु मेरी नियुक्ति कर अन्य वांछित सुविधायें प्रदान कीं।

डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, उज्जैन विश्व-विद्यालय की विशेष आभारी हूं जिन्होंने विषय सम्बन्धी समस्त शंकाओं का समाधान करते हुए शोध कार्य को सुगम बनाया।

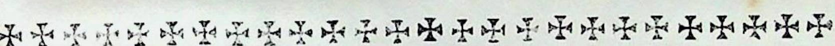
मैं डॉ० ओम प्रकाश गुप्त, रीडर, हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय के प्रति भी विशेष रूप से आभार व्यक्त करती हूं जिन्होंने समय-समय पर अपने सुझावों द्वारा शोध-कार्य को सरल बनाया।

विभाग के अन्य सदस्यों के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूं जिनकी सद्प्रेरणाओं से शोध कार्य सम्पन्न हुआ।

शक्ति विषयक उक्त शोध कार्य नितान्त समय एवं श्रम साध्य है और एक वर्ष की अल्प अवधि में इस गहन विषय को प्रकाश में लाना किसी भी शोधार्थी के लिए सरल कार्य न होगा। अतः जहां कहीं भी विषय सीमित हुआ है, वहां विषय से बच कर निकलने का प्रयास नहीं अपितु परियोजना के लिए निर्धारित समय की सीमा ही कारण रही है।

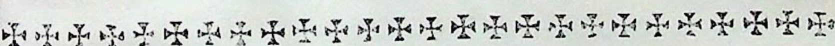
विनीत

—डॉ० परमेश्वरी शर्मा



पहला अध्याय

देव की प्रत्यक्ष शक्ति "देवी"



"देव" की प्रत्यक्ष शक्ति "देवी"

अनादि काल से ही मानव सम्पूर्ण विश्व में शक्ति का अन्वेषण करता आ रहा है। जीवन में सर्वत्र शक्ति का ही आधिपत्य है। शक्ति विहीन मानव या देवता का जीवन कोई अर्थ नहीं रखता। सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा भी उसी आदिशक्ति की सहायता से सृष्टि का त्रिविध (उत्पत्ति, पालन व संहार) संचालन करते आ रहे हैं। पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर की उपासना छः रूपों में होती है—गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव, शक्ति तथा निर्गुण-निराकार ब्रह्म। इन रूपों में निर्गुण ब्रह्म तो ज्ञान का विषय है शेष पांच रूप सगुण-साकार हैं। शिव, विष्णु, शक्ति आदि की उनसे सम्बन्धित पुराणों में अद्वितीय महिमा बतलाई गई है। सभी सम्प्रदायों में एक ही सर्वोपरि परमात्मतत्व से एक साथ ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा देवी की उत्पत्ति का वर्णन हुआ है। संसार के आदिग्रन्थ "ऋग्वेद" में इस सिद्धान्त का बड़े स्पष्ट रूप से प्रतिपादन हुआ है—"वह सत्तत्व एक ही है यद्यपि ज्ञानी अपने स्वतन्त्र विचारानुसार उसका वर्णन इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, गरूड़, यम, मातारिश्वा (वायु देवता) आदि अनेक नामों और रूपों में करते हैं।"[1]

हमारे देश में सर्वव्यापी चेतन सत्ता की उपासना माता के रूप में की जाती है। मां की शक्ति को सृष्टि में प्रधान मान कर उपासना करना हजारों वर्ष पूर्व हमने सीखा। प्राप्त ऐतिहासिक अवशेषों पर दृष्टिपात किया जाए तो गर्भधारण, शिशु का पोषण तथा शिशु से प्रेमालिंगन करती हुई नारी का चित्रण विश्व में चिरकाल से होता रहा है। इस बात का प्रमाण पाषाण युग के कल्पित चित्र तथा मूर्तियां हैं। सम्भवतः ऐसी चित्र-रचना उस समय के मानव-मन में थी जब वह शिकारी तथा अन्न-संग्रहक की संज्ञा से विभूषित था। ये कल्पनाएं निश्चित रूप से प्रमाणित करती हैं कि प्रारम्भ से ही दिव्यत्व की कल्पना संसार की रचना एवं पालन-पोषण करती हुई मां के रूप में की गई है।

व्यक्ति अपनी सर्वाधिक श्रद्धा मां के प्रति रखता है क्योंकि मां की गोद में ही सर्वप्रथम उसे इस सृष्टि को देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है। इसीलिये "मातृदेवा

---

1. इन्द्रं मित्रं वरूणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सपर्णो गुरूत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधावदन्त्यग्नि यमं मातरिश्वान वाहुः ॥

ऋग्वेद 1-134-46

भव", "पितृ देवो भव", "आचार्य देवो भव"—इस मन्त्र में माता को ही सर्वप्रथम स्थान दिया गया है।

परमात्मा की स्त्री रूप में पूजा ही शक्ति पूजा है। यह पूजा किसी न किसी रूप में संसार भर में प्रचलित है और मातृ देवता के उत्स में प्रतिष्ठित है। सृष्टि की उत्पत्ति करने वाली ताकत को मां के रूप में देखा गया है। विश्वकोश के अनुसार—"शक्तिवाद मुख्यत: सक्रिय नारी की पूजा है। जोकि अनेक रूपों में शिव के साथ काली, देवी, पार्वती आदि के रूप में सम्बन्धित है।"[1] यद्यपि वैदिक उपासना पद्धति में देवताओं का महत्त्व अधिक रहा है किन्तु वैदिक साहित्य में अदिति, पृथ्वी, यमी, वाक् आदि देवियों का उल्लेख मिलता है। वहां परमतत्व की मातृ रूप में उपासना हुई है। ऋग्वेद में देवी स्वमुख से कहती है—"मैं ही समस्त संसार की राज्ञी हूं, मेरे ही उपासक विभूति सम्पन्न होते हैं, मैं ही ब्रह्म हूं तथा ब्रह्मज्ञान सम्पन्न हूं. सभी यज्ञों में पहले पूजा का अधिकार मुझी को प्राप्त है। इस प्राणि जगत् के दर्शन, श्रवण, अन्न ग्रहण, श्वासोच्छ्वास आदि समस्त कार्य मेरी ही शक्ति से सम्पन्न होते हैं। जो मनुष्य इस संसार में शुद्ध-भाव से मेरी उपासना न कर मेरी अवज्ञा करता है, वह दिन-ब-दिन क्षीण होता जाता है और अन्त में नष्ट हो जाता है। हे सखे ! मैं जो कुछ कहती हूं, ध्यान देकर सुनो—श्रद्धा के द्वारा जिस ब्रह्मवस्तु का साक्षात्कार होता है, वह मैं ही हूं, मेरी ही कृपा से मनुष्य श्रेष्ठत्व प्राप्त करता है, मेरे कृपा कटाक्ष से मनुष्य ब्रह्मा, ऋषि और बुद्धिमान बनता है।[2]

पुराणों में सर्वत्र ही देवी की महिमा गाई गई है। और उसे जगत् की संचालिका तथा आदिशक्ति बतलाया है। देवीपुराण, मार्कण्डेय पुराण, कालिका पुराण. आदि में देवी का महात्म्य विपुल मात्रा में वर्णित है। मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है कि "जब-जब संसार में दानवी बाधायें पैदा होंगी तब-तब अवतार लेकर मैं शत्रुओं का

---

1. "Shaktism, the worship of the active female, principle, (Prakriti) as manifested in one other of the forms of the consort of Siva-Kali, Devi, Parveti and many others."
   An Encyclopeadia of Religion by M.A. Canney, (1976), p. 705.

2. अहम् राष्ट्री संगमनी वसूनाचिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
   मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यतिय प्राणिति यः ई शृणोत्युक्तम्॥
   अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति श्रुधिश्रुत श्रद्धिवं ते वदामि।
   यं कामये तं तमुग्नं कृणोमितं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम॥
   (ऋग्वेद 10/125 देवीसूक्त)

संहार करूंगी ।[1] दुष्ट दलन तथा धर्म की संस्थापना के लिए देवी अवतीर्ण होती है। "देवी भागवत" में शक्ति की प्रधानता को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि देवी तथा ब्रह्म में वास्तविक भेद नहीं है । इसका प्रतिपादन इस प्रकार है—"मैं और ब्रह्म एक ही हैं, मुझ में और ब्रह्म में थोड़ा भी भेद नहीं है । जो वे हैं वही मैं हूं, जो मैं हूं वही वे हैं । बुद्धिभ्रम के कारण भेद प्रतीत होता है ।"[2]

"देवी" अथवा "शक्ति" का आशय उस सत्ता से है जो सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय का मूल है। देवी सर्वशक्तिमान चराचर जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण है । जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण निराकार ब्रह्म का व्यक्त रूप वह "शक्ति" ही है । परमात्मा इसी शक्ति के द्वारा ही संरक्षण, संहार और शक्ति द्वारा ही लय करता है । शक्तिमान एक ही है। इसलिए शक्ति पूजा का अर्थ प्रभु की महिमा, प्रभुत्व तथा सर्वोपरि होने की पूजा है । देव की प्रत्यक्ष शक्ति ही देवी मानी जाती है। "देवी", "शक्ति" और दूसरे कितने ही नाम और स्वरूप मनुष्य के सीमित ज्ञान के परिणाम स्वरूप निर्दिष्ट किए गए हैं । उस शक्ति की कोई व्याख्या अन्तिम नहीं कही जा सकती । मूल शक्ति तो मनुष्य की बुद्धि से परे है। सत्य तो यह है कि सम्पूर्ण जगत् किसी प्रकार शक्ति का ही उपासक है. क्योंकि संसार में एक भी प्राणी ऐसा नहीं है जो किसी न किसी तरह से शक्ति की अभिलाषा न रखता हो । भौतिक शास्त्र और विज्ञान भी यह सिद्ध कर चुका है कि जगत् में सब कुछ अनन्त क्रियात्मक है । इस क्रिया शक्ति को प्रतिक्षण स्थिर रखने वाली देवी "शक्ति" स्वरूप है । "शक्ति" की पूजा निराकार रूप में नहीं की जा सकती, इसलिए उसके प्रत्यक्ष स्वरूप की कल्पना उत्पत्ति, स्थिति और लय के आधार पर करनी पड़ती है। इन तीनों शक्तियों का नाम क्रम से सरस्वती, लक्ष्मी और काली रख दिया गया है। वस्तुतः "ये भिन्न-भिन्न देवियां नहीं है, वरन् एक ही निराकार देवी की पूजा के तीन साकार स्वरूप हैं—सौम्य, प्रचण्ड और कामप्रधान । सामान्य भाव से सौम्य रूप की पूजा की जाती है। घोरपन्थी कापालिक देवी का प्रचण्ड रूप अर्चन करते हैं और कामरूपिणी की उपासना शाक्त करते हैं ।"[3] इन शक्तियों के अनुरूप ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी इस प्रकार

---

1. इत्थं यदा-यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ।।

(मार्कण्डेय पुराण 91/5)

2. "सदैवत्वं न भेदोऽस्ति सर्व दैव ममास्य च ।
थोऽसौ साहमहं यासौ भेदोऽस्ति मति विभ्रमात् ।।"

(देवी भागवत् 3/6/2)

3. आर० एस० गर्ग—शाक्त-प्रतिमायें, भूमिका ।

अलग-अलग देव नहीं हैं वरन् एक ही परमात्मा में तीन रूपों की कल्पना की गई है। मातेश्वरी शक्ति परमात्मा की उन प्रधान शक्तियों में से एक है जिसका रूप आवश्यकतानुसार समय-समय पर प्रकट होता रहता है। वही पुरुषों में पुरुषोत्तम विष्णु है, युद्ध में दुर्गा और प्रलय में महाकाली है। देवी की उपासना सरस्वती, लक्ष्मी और दुर्गा के रूप में की जाती है। सरस्वती का सम्बन्ध बुद्धि, संवेदना और ज्ञान से है, अतः उसको उपासना बुद्धि, विचारशक्ति और आत्मप्रकाश के लिए है। लक्ष्मी का आशय केवल धनधान्य की वृद्धि से ही नहीं वरन् हर प्रकार की उन्नति, आनन्द और ऐश्वर्य के स्वरूप से है। महाकाली अनेक को एक में लय कर देती है। इस प्रकार देवी-पूजा का अर्थ है अनेक प्रकार की आधिदैविक साधनाओं को पूर्ण करने की विधि। धार्मिक आस्थानुसार देवी का चाहे कोई भी नाम हो पर यह सत्य है कि वह ही एक सर्वव्यापक, सर्वसत्तामान शक्ति है जो सम्पूर्ण विश्व एवं प्रार्थी को हर प्रकार से संरक्षण प्रदान करती है।[1]

भारतीय साधना में यह विश्वास किया जाता है कि इस सृष्टि में किसी एक ईश्वरीय शक्ति की सत्ता अवश्य है जो अदृश्य होकर भी इस विराट् जगत् की नियामिका है और सम्पूर्ण संसार की गतिविधियां इसी से संचालित हैं।

शक्ति की उपासना को साधारणतः तांत्रिक उपासना कहते हैं। तंत्र (आगम) और वेद (निगम) आध्यात्मिक ज्ञान के दो ही आधार हैं। मनुष्य रूपी बच्चे के लिए ये माता-पिता के समान हैं। आगम व्यवहार शास्त्र है और निगम सिद्धान्त है। तन्त्र की साधनाएं इतनी प्रभावशाली मानी गई हैं कि वे शीघ्र ही सिद्धि प्रदान करती हैं। तन्त्र द्वारा प्रकृति और पुरुष, शक्ति और शिव का योग होकर संसार और परमार्थ दोनों ही बनते हैं। भोग और योग को एक साथ मिलाकर चलने वाला आगम ही तन्त्र शास्त्र है। तांत्रिकों की दृष्टि में शिव और शक्ति में कोई भेद नहीं है। मूलतः दोनों एक ही है, जो परमशिव है वही परमशक्ति है। शक्ति के बिना शिव इच्छाहीन, ज्ञानहीन, कर्महीन और स्पन्दनहीन शवमात्र है। प्रकाशात्मक शिव के बिना शक्ति आत्मप्रकाश मे भी असमर्थ है। दोनों ही चिद्रूप होने के कारण अभिन्न हैं, एक को छोड़ कर दूसरा रह ही नहीं सकता। ''शिव तथा परमशिव एक होने पर भी ठीक एक नहीं हैं, क्योंकि शिव शक्तिहीन प्रकाशमात्र है, यह शिव होने पर भी वस्तुतः शव है या जड़वत् है। परन्तु शक्ति के योग से और उसकी समरसता के प्रभाव से वही शिव

1. 'The Shakti, whatever be the name—Kali, Durga, Amba, Bahesara—is the omnipotent, omnipresent, and omniscient, deity, who in variably protects the devoti and the world.'

Editor D.C. Sircar : The Shakti Cult and Tara (1967), p. 62

परमशिव पद को प्राप्त होता है। उस स्थिति में वह विश्वोतीर्ण होने पर भी विश्वात्मक है।"[1] आगमों में यही महाशक्ति पराशक्ति, चैतन्यशक्ति आदि अनेक नामों से विवेचित हुई है। शक्ति सक्रियता का प्रतीक है। "शिव की सृष्टि करने की इच्छा का नाम ही शक्ति है। शक्ति से समस्त पदार्थ उत्पन्न हुए हैं, शक्ति शिव की प्रिया है परन्तु शिव और शक्ति में कोई भेद है। चन्द्रमा और चन्द्रिका का जो संबंध है वही शिव और शक्ति का सम्बन्ध है।"[2]

स्पष्ट है कि शक्ति ही समस्त सृष्टि की संचालिका है। शिव उसके बिना कुछ भी करने में अक्षम हैं।

तांत्रिक साधनानुसार शिव अकुल और शक्ति कुल है अर्थात् शक्ति शिव के बिना और शिव शक्ति के बिना अधूरे हैं। तंत्र उपासना में प्रचलित सात आचारों में कौलाचार सर्वश्रेष्ठ आचार है जिस में साधक उस पराशक्ति के साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित करते हैं किन्तु वामाचारी स्थिति में भोग की शक्ति का ऐसे ढंग से उपयोग किया जाता है कि वह अपने आप खत्म हो जाए। वे देवी की पूजा में पंचमकारों—मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन का प्रयोग करते हैं। इन के अनुसार इन सभी प्रलोभनों में जो साधक नहीं पड़ता उस का मार्ग सुगम होता है और वह परमानन्द को प्राप्त होता है। वे अपने शरीर में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को देखते हैं। सभी प्रकार के तीर्थ शरीर में ही समाहित मानते हैं। इस प्रकार तांत्रिकों की मूल धारणानुसार शिव और शक्ति मनुष्य के भीतर अवस्थित हैं। शिव का निवास सहस्राचक्र में है और शक्ति मूलाधर में है। वास्तव में प्रत्येक प्राणी में शक्ति प्रसुप्त है। केवल लीला के लिए उसने कंचुकी डाल रखी है। इसी सुप्त शक्ति को जागृत करने के लिए साधना की आवश्यकता है। इसे ही निर्गुण पंथी कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं। "यही कुण्डलिनी शक्ति समस्त विश्व में व्याप्त शक्ति है। इसी की इच्छा से, इसी की सहायता से शिव इस विश्व-प्रपंच की उत्पत्ति, पालन व विलय में समर्थ होते हैं।"[3]

शक्ति-साधना का मूल सूत्र नाद ज्ञान या शब्द का क्रमिक उच्चारण है। विन्दु या कुण्डलिनी जागृत होकर नाद का विकास करती है। यह छः चक्रों—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा से विकसित क्रम में सहस्राचक्र में महाशक्ति का स्वरूप धारण कर लेती है। आज्ञाचक्र भेदन से ज्ञानोदय होता है, यही योगियों का ज्ञानचक्षु है।

---

1. गोपीनाथ कविराज—तांत्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि, पृ० 9
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी—नाथ सम्प्रदाय, पृ० 59
3. वही वही, पृ० 103

शक्ति उपासना में बीजतत्व, यन्त्र चक्र, मन्त्र दीक्षा, गुरू, मातृका, पीठ, न्यास आदि का सम्यक ज्ञान आवश्यक है। गुरू से दीक्षा लेकर शिष्य बीज मन्त्रों की साधना करता है और साधना के लिए उचित न्यास का अनुसरण करते हुए शरीर के अंगों पर विभिन्न देवताओं का आह्वान करता है। साधना के इस क्रम में साधक यन्त्रों का सहारा लेता है जो भोजपत्र, कागज अथवा धातु आदि पर अंकित होता है, साधक यन्त्र विशेष पर देवी की पूजा करता है। साधक यह भावना करता है कि मैं देवी ही हूं। शाक्तों, शैवों और वैष्णवों के अनुसार साधक सार्वभौमिक सत्ता का सहसा साक्षात्कार सहन नहीं कर सकता अतः उसके एक अंश में अभिव्यक्त रूप की साधना की जाती है, इस लिए नाना देवी-देवताओं का विधान किया जाता है। देवता/देवी की मूर्ति का वास्तविक अर्थ साधक की चेतना में स्फुरित दिव्य सत्ता का रूप किया गया है, बाहरी मूर्तियां केवल आंतरिक मूर्ति के जागृत करने का साधन मात्र हैं।

शक्ति उपासना में भी उपर्युक्त आधारों पर ही विविध देवियों की कल्पना की गई है। इसमें दस महाविद्यायें, सप्त मातृकाएं तथा नव दुर्गा इत्यादि हैं। इन्हीं देवियों में से किसी एक को अधिष्ठात्री देवी मानकर उसी के सम्मुख सारी क्रियाएं की जाती हैं। दस महाविद्यायों में भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, मातंगी, कमला, बगलामुखी, महाकाली, तारा, षोड़षी और भुवनेश्वरी की गणना की जाती है।

त्रिपुर भैरवी : इस की उपासना इन्द्रियों पर विजय और सब प्रकार के उत्कर्ष हेतु की जाती है।

छिन्नमस्ता : इस की उपासना अत्यन्त रहस्यमयी है। ऐसा कहा जाता है कि चतुर्थ सन्ध्याकाल में छिन्नमस्ता के मन्त्र की साधना से साधक सरस्वती सिद्ध कर लेता है। यह देवी श्वेत कमल पर खड़ी है।

धूमावती : भयरूपा होती हुई भी धूमावती अपने उपासकों के कल्याण हेतु सदा तत्पर रहती है। इस की उपासना पुत्र लाभ, धन-रक्षा और शत्रु-विजय के लिए की जाती है।

मातंगी : मातंग ऋषि की पुत्री होने के कारण इस को मातंगी कहा जाता है। इसकी उपासना गृहस्थ जीवन को सुखी बनाने, पुरुषार्थ सिद्धि और वाग्विलास में निपुण होने के लिए की जाती है।

कमला : कमला की उपासना जगत् की आधार शक्ति की उपासना है। ये विष्णु की लीला विलास-सहचरी है ये परम वैष्णवी सात्विक और शुद्ध आचरा है तथा कमल पर विराजमान है।

बगलामुखी : इस की उपासना में पीले वस्त्र, पीला आसन और पीले पुष्पों का विधान है। इसकी उपासना शत्रु भय से मुक्त होने तथा वाग्सिद्धि के लिए की जाती है।

महाकाली : तांत्रिक उपासना में काली को विशेष महत्त्व प्राप्त है। इस की उपासना वीर भाव से की जाती है। काली की साधना कठिन है अतः साधक का दीक्षित होना आवश्यक है।

तारा : महाविद्याओं में तारा रात्रि देवी स्वरूपा, अद्भुत प्रभावशाली तथा सिद्धि की अधिष्ठात्री देवी कही गई है। तारा देवी की उपासना भोग-मोक्ष की प्राप्ति, शत्रु नाश तथा वाक्शक्ति की प्राप्ति के लिए की जाती है।

षोड़षी : चार भुजाओं और तीन नेत्रों वाली इस देवी की अंग कान्ति सूर्य-मण्डल की आभा की भान्ति है। इनके चारों हाथों में पाश, अंकुश, धनुष और बाण है। संसार के समस्त मंत्र-तंत्र इसी देवी की आराधना करते हैं।

भुवनेश्वरी : यह महाविद्या सब को नाना प्रकार से पोषण प्रदान करने वाली, शिव के लीला-विलास की सहचरी और सभी प्रपंचों की आदि-कारण है। इसकी उपासना भक्त जन सभी प्रकार की सिद्धियां प्राप्त करने के लिए करते हैं।

मूलतः सभी महाविद्याओं में एक ही आद्यशक्ति के विभिन्न रूपों का विस्तार है। इन विद्याओं की उपासना का आशय मोक्ष की साधना है। दस महाविद्याओं के अतिरिक्त सात माताएं—ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, बाराही, ऐन्द्राणि तथा चामुण्डा हैं—जिन का स्वरूप इस प्रकार है—

ब्राह्मी : चार मुख और छह भुजाओं वाली है। हंस इसका वाहन है। यह मृगचर्म का उत्तरीय धारण किए हैं। दाहिनी तरफ के तीन हाथों में क्रमशः वर-मुद्रा, अक्षय सूत्र स्रुवा तथा बाईं तरफ के तीनों हाथों में पुस्तक, कुण्डी और अभय मुद्रा धारण किए हुए हैं।

माहेश्वरी : पांच मुख, तीन नेत्र और दस भुजाओं वाली यह देवी बैल पर सवार है। हाथों में क्रमशः एक तरफ खड्ग, वज्र, त्रिशूल, परशु और अभय मुद्रा तथा दूसरी तरफ पाश, घंटा, नाग, अंकुश और वरद मुद्रा धारण किए हैं।

कौमारी : इसका वाहन मयूर है। छह मुख और बारह भुजाओं से युक्त इस देवी के दाईं तरफ के हाथों में वरमुद्रा, शक्ति, पताका, दण्डपात्र और वाण तथा बाएं भाग के हाथों में धनुष, घण्टा, कमल, कुक्कट परशु और अभय मुद्रा धारण करती हैं।

वैष्णवी : गरुड़ पर सवार यह देवी छह भुजाओं से सुशोभित है। दाहिने हाथों में वरद मुद्रा, गदा और कमल धारण करती है और बाईं तरफ शंख, चक्र और अभय मुद्रा।

वाराही : सूकर के समान मुख वाली तथा विशाल उदर वाली देवी वाराही भैंसे पर सवार होती है, इसका वर्ण काला है। दाहिने हाथों में वरद मुद्रा, दण्ड और खड्ग धारण करती है और बाएं हाथों में ढाल, पात्र और अभय मुद्रा।

ऐन्द्राणी : स्वर्ण तुल्य अंग-कांति वाली, सहस्त्र नेत्रों से युक्त तथा हाथी पर सवार ऐन्द्राणी अपने दाहिने हाथों में कमल, पात्र और नीचे के हाथों में अभय मुद्रा धारण करती है।

चामुण्डा : विकृत आकार वाली चामुण्डा नागों को आभूषण के रूप में धारण करती है। इसकी दस भुजाएं हैं, कुक्षी क्षीण है, काला रंग है और प्रेत पर सवार है। दाहिने हाथों में मूसल, चक्र, चामर, अंकुश और खड्ग तथा बाएं में ढाल, पाश, धनुष, दण्ड और कुठार धारण करती है। इन के अतिरिक्त शैल पुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कुष्मांडा, स्कन्धमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी और सिद्धिदात्री नवदुर्गाएं हैं।

शैलपुत्री : यह पर्वतों के राजा हिमवान की पुत्री है जो पूर्व जन्म में दक्ष की बेटी सती भवानी थीं।

ब्रह्मचारिणी : दूसरी दुर्गा शक्ति ब्रह्मचारिणी है। यह देवी ज्योतिर्मय भव्य मूर्ति है। इसके दाहिने हाथ में जप की माला, बाएं हाथ में कमण्डल है। इसके लिए कहा जाता है कि यह पूर्व जन्म में दक्ष की बेटी थी और शिव की पत्नी थी। नारद जी ने शिव के साथ इस के विवाह की भविष्यवाणी की थी तभी से शिव को पाने के लिए निरन्तर तप में लीन रही। अत. इसका नाम ब्रह्मचारिणी प्रसिद्ध हुआ।

चन्द्रघन्टा : इसके मस्तक पर घण्टे के आकार का अर्ध चन्द्र है। तीन नेत्र और दस हाथों वाली यह दुर्गा शक्ति खड्ग और बाण आदि अस्त्र-शस्त्र

धारण करती है। यह शेर पर सवार होती है। इसके घण्टे की ध्वनि ही दुष्टों को भयभीत कर देती है।

कुष्मांडा : यह सिंह पर सवार है तथा सूर्यमण्डल के भीतर निवास करती है। इस की आठ भुजाएं हैं—सात भुजाओं में सात प्रकार के अस्त्र और दाहिनी भुजा में जप माला है।

स्कन्धमाता : यह पांचम दुर्गा है। स्कन्ध (शिव का पुत्र कार्तिकेय, जिसे स्कन्ध भी कहा जाता है) की माता होने के कारण इस का नाम स्कन्ध-माता पड़ा। इन की तीन आंखें और चार भुजाएं हैं। श्वेत वर्ण वाली यह देवी कमल पर विराजमान है।

कात्ययानी : कात्यायनी ऋषि की पुत्री होने के कारण इसका नाम कात्ययानी पड़ा। यह ब्रज-मण्डल की अधिण्ठात्री देवी है। इनके तीन नेत्र तथा आठ भुजाएं हैं जो विभिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित हैं।

कालरात्रि : गहरे काले रंग और बिखरे केशों वाली इस देवी के गले में विद्युत सदृश चमकने वाली माला है। ब्रह्मांड की तरह गोल तीन नेत्र हैं। यह गधे पर सवार है।

महागौरी : यह गौरवर्ण तथा चार भुजाओं वाली देवी दुर्गा है। इसके हाथों में अक्षय सूत्र, कमल, कमण्डल तथा अभय मुद्रा रहते हैं। आठ वर्ष की अवस्था वाली श्वेत वस्त्र और आभूषणों से सुशोभित वृषभ की सवारी करती है।

सिद्धदात्री : सभी प्रकार की सिद्धियां देने वाली यह महाशक्ति सिद्ध दात्री कहलाई। सिंह इस का वाहन है और चतुर्भुजी है।

स्पष्ट है कि उपर्युक्त नव दुर्गाएं मूल रूप से एक ही देवी के विभिन्न नाम हैं। यह देवी शिव की पत्नी पार्वती के रूप में ही मानी जाती है। उपर्युक्त देवियों में प्रत्येक का रूप, वेश, अस्त्र-शस्त्र, वाहन, मंत्र आदि अलग-अलग है। ये देवी अपनी इच्छा से असंख्य रूप धारण करती है। इन देवियों के साथ साधक तादात्म्य स्थापित करते हुए यह मानता है कि वह जगत्जननी, जगन्मयी और आनन्दकारिणी है। नवरात्रों के उत्सव में इन्हीं शक्तियों की पूजा की जाती है।

उपर्युक्त देवियों के अतिरिक्त भारत में बिखरे "शक्ति पीठ" भी शक्ति-उपासकों के लिए महत्त्व रखते हैं। शक्ति पीठों की उद्भावना के सम्बन्ध में पुराण सम्मत

अवधारणा यह है कि दक्ष-पुत्री सती ने अपने पिता के यज्ञ में जब अपने पति भगवान शंकर के अपमान से स्वयं को यज्ञ-कुण्ड में होम कर दिया, तब उसके शव को भगवान शंकर अपने कंधों पर रख कर उद्भ्रांत भाव से नाचने और घूमने लगे। सर्वत्र हाहाकार मच गया। तब देवताओं के अनुनय-विनय पर भगवान् विष्णु ने सुदर्शन चक्र द्वारा उस शव के टुकड़े किए। सती के मृत शरीर के विभिन्न अंग और उनमें पहने आभूषण इक्कावन स्थलों पर गिरे, जिससे वे स्थल शक्ति पीठों के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। सती के शरीर के ऊपरी भाग जहां गिरे वहां दक्षिणमार्गी उपासना होती है और जहां निम्न भाग गिरे वहां वाममार्गी उपासना होती है। जहां-जहां भी ये शक्ति पीठ स्थापित हैं उन स्थलों पर किसी न किसी रूप में भैरव की उपासना भी अवश्य होती है।

इन शक्ति-पीठों की सूची इस प्रकार है :—

क्र० सं०	आभूषण/अंग का नाम	गिरने का स्थान	देवी का नाम
1.	किरीट	वतनगर के पास गंगा तट पर	विमला या भुवनेशी
2.	ब्रह्मरन्ध्र	हिमालय या हिंगुल	कोहरी
3.	त्रिनेत्र	सर्कर	महिषमर्दिनी
4.	दायां कान	श्री पर्वत (लद्दाख)	श्री सुन्दरी
5.	बायां कान	करतोया के तट पर	अर्पणा
6.	केश	बृन्दावन	उमा
7.	कर्ण मणि	वाराणसी	विशालाक्षी
8.	नासिका	सुगन्धा	सुनन्दा
9.	बायां गाल	गोदावरी-तट	विश्वेशी, विश्वमातृका
10.	दायां गाल	गण्डकी	गण्ड की चण्डी
11.	ऊपर के दांत	शुचि (तमिलनाडू)	नारायणी
12.	नीचे के दांत	पंच्च सागर	वाराही
13.	जिह्वा	ज्वालामुखी (कांगड़ा)	अम्बिका, सिद्धिदा
14.	ऊपरी होंठ	भैरव पर्वत	अवन्ती
15.	नीचे का होंठ	अट्टहास (वर्धमान)	फुल्लरादेवी

16.	चिबुक	जनस्थान (नासिक)	भ्रामरी
17.	कण्ठ	कश्मीर	महामाया
18.	कण्ठहार	नन्दीपुर	नन्दिनी
19.	ग्रीवा	श्रीशैल (आंध्र प्रदेश)	महालक्ष्मी
20.	उदरनली	नलहटी (शांतिनिकेतन)	कालिका
21.	वाम स्कन्ध	मिथिला	महादेवी
22.	दायां स्कन्ध	रत्नावली	कुमारी या शिवा
23.	उदर	प्रभास (गुजरात)	चन्द्रभागा
24.	बायां स्तन	जालन्धर	त्रिपुरमालिनी
25.	दायां स्तन	रामगिरि	शिवानी
26.	हृदय	वैद्यनाथ	नवदुर्गा या जयदुर्गा
27.	मन	व्रकनाथ	पापहरा या महिषमर्दिनी
28.	पीठ	ववस्वत	त्रिपुटा
29.	वाईं वाजू	वाहुलाय	वाहुली
30.	दाईं वाजू	वक्रेश्वर	बक्रेश्वरी
31.	कुहनी	उज्जयिनी	मंगल चण्डी
32.	कलाइयां	मणिवेदिक (राजस्थान में पुष्कर के पास)	गायत्री
33.	दोनों हाथों की अंगुलियां	प्रयाग	कमला या कल्याणी
34.	नाभि	उड़ीसा	विजया, विमला
35.	जठर	हरिद्वार	भैरवी
36.	कंकाल	कांची (तमिलनाडु)	देवगर्भा
37.	बायां नितम्ब	कालमाधव	काली
38.	दायां नितम्ब	नर्मदा	सोनाक्षी
39.	योनि	कामगिरि	कामाख्या देवी
40.	वाईं जंघा	जयन्तिया	जयन्ती
41.	दाईं जंघा	नेपाल	महामाया या दुर्गा
42,	बायां पांव	त्रिस्रोता	अमरी

43.	दायां पांव	त्रिपुरा	त्रिपुर सुन्दरी
44.	बायां जानु	मलव	शुभ चण्डी
45.	दायां जानु	स्रोता	चण्डिका
46.	बायां टखना	विभास	भीम रूपा
47.	दायां टखना	कुरुक्षेत्र	सावित्री
48.	नूपुर	लंका	इन्द्राक्षी
49.	बाईं हथेली	यशोर	यशोरेश्वरी
50.	पांव की अंगुलियां	विराट्	अम्बिका
51.	पांव का अंगूठा	क्षीरग्राम	भूतधात्री

उक्त इक्यावन शक्ति पीठों के अतिरिक्त एक सौ आठ "देवीधाम" भी शक्ति-उपासकों के लिए महत्वपूर्ण हैं।

कश्मीर मण्डल की प्रमुख देवियों में वैष्णो देवी धाम एक स्वतन्त्र शक्ति स्थल के रूप में विख्यात है। यह जम्मू के सुदूर पहाड़ी प्रदेश में स्थित है। इसमें तीन पिण्डियां महालक्ष्मी, महासरस्वती और महाकाली की प्रतीक मानी जाती हैं। यह एक मात्र ऐसा देवी स्थल है जहां पर उत्पत्ति, पालन और संहारक रूपों की समन्वित पूजा होती है।

देवी के उपासक मन्त्रों, स्तोत्रों, सप्तशती, देवी भागवत् के पाठ से देवी की अराधना करते हुए मोक्ष की कामना करते हैं। प्रदेश-भेद से उपासना में अन्तर अवश्य रहता है किन्तु दो विशेष पर्वों—चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को शुरू होने वाले नवरात्रे तथा आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ होने वाले नवरात्रों पर देवी की उपासना सम्पूर्ण भारतवर्ष में विशेष रूप से होती है। इन दिनों दुर्गा के विभिन्न रूपों का स्मरण, पूजन, व्रत तथा अखण्ड ज्योति जला कर देवी-पूजा का विधान है। अष्टमी वाले दिन कुमारी कन्याओं को दुर्गा का प्रतीक मान कर पूजन तथा भोजन करवाने का भी विधान है। बंगाल में चूंकि दुर्गा-पूजा का विशेष महत्त्व है अतः वहां दुर्गा-पूजा के उत्सव विशेष उत्साह से मनाये जाते हैं। देवी की आकर्षक मूर्तियां बनाकर उन की पूजा की जाती है और अष्टमी को जुलूस के साथ धूमधाम से उनको जल में प्रवाहित किया जाता है। □

✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠

दूसरा अध्याय

शक्ति पूजा : उद्भव एवं विकास

✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠

शक्ति पूजा--उद्भव एवं विकास

शक्ति पूजा का आरम्भ कब और कैसे हुआ, इस विषय में यह कहा जा सकता है कि देवी की उपासना चिरकाल से चली आ रही है। विभिन्न उत्खननों के फलस्वरूप देवी की अनेक प्रतिमायें मिली हैं। मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा में एक प्रकार की मृण्मयी मूर्तियां मिली हैं जिन्हें पुरातत्व शास्त्री मातृ देवी की मूर्ति मानते हैं। ये मूर्तियां प्रायः नग्न हैं। मातृ देवी की पूजा प्राचीन काल में ईजीयन प्रान्त से सिन्धु प्रान्त के बीच के सभी देशों—फारस, मिस्र, सीरिया, ईराक, लघु एशिया आदि में प्रचलित थी। इन देशों की मूर्तियों में इतनी विशिष्ट समानताएं हैं कि यह धारणा स्वीकार करनी पड़ती है कि प्रागैतिहासिक युग में मातृ-पूजा का भूमध्य सागर से भारत तक प्रचार था।[1] यह निश्चित है कि सिन्धु घाटी के लोगों ने अपने पीछे मातृ का पूजन की ऐसी परम्परा छोड़ी जिसे भारतीयों ने शक्ति, देवी, माता, भूमि, ग्राम देवता के रूप में स्वीकार किया है और वही आज तक सर्वोपरि देवी या मही मां के रूप में चली आ रही है। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की मूर्तियां कल्याणमयी भद्रकरणी देवी की हैं किन्तु कुल्ली से कुछ ऐसी मूर्तियां भी मिली हैं जो भयंकर मुख वाली हैं। उन्हें बालकों का खिलौना नहीं माना जा सकता किन्तु उन में मृत्यु का भयंकर भाव स्पष्ट है और वे उत्तर कालीन चण्डिका का पूर्व रूप जान पड़ती है।[2]

वैदिक काल में इसी मातृ शक्ति की उपासना पृथ्वी या प्रकृति देवी के रूप में होती रही है। यही ऋग्वेद के आदित्यों की माता अदिति है। आर्य और अनार्य दोनों प्रकार का जन समूह इसी अम्बिका या मातृ देवी के नाना रूपों की पूजा करता आया है।

अथर्ववेद के 63 मन्त्र में पृथ्वी की स्तुति की गई है। निम्न मन्त्र में पृथ्वी को माता कहा गया है—

"माता भूमि: पुत्रो अहं पृथिव्या:" (अथर्ववेद : 2/ 1 / 12)

---

1. सांवलिया बिहारी लाल वर्मा—भारत में प्रतीक-पूजा का आरम्भ और विकास, पृ० 1
2. सांवलिया बिहारी लाल वर्मा—भारत में प्रतीक-पूजा का आरम्भ और विकास, पृ० 31

महाकाव्य काल में शक्ति एक सर्व सम्पन्न देवी के रूप में उभर कर आती है। "महाभारत" की दुर्गा स्तुति देवी पूजा का प्रथम शास्त्रीय निदेश है। अज्ञातवास के समय जब पाण्डवों ने द्रोपदी के साथ मत्स्यनगर में प्रवेश किया तो युधिष्ठिर ने मन ही मन त्रिभुवनेश्वरी दुर्गा की स्तुति की थी। उस स्तुति में कहा गया है कि "दुर्गा ने यशोदा के गर्भ से नन्द गोप कुल में जन्म लिया था। कंस द्वारा शिला पर पटकी जाते ही वह आकाश में अन्तर्हित हो गई थी। देवी को दिव्य माला धारिणी, दिव्याम्बरधरा व खड्ग-धारिणी बताया है। उसका वर्ण बाल सूर्य जैसा, मुख पूर्ण चन्द्र जैसा है। चतुर्मुख और चतुर्भुज है। कृष्ण वर्णा तथा अष्टभुजी के रूप में भी उसकी कल्पना की है। वह अष्टभुजाओं में वर, अभय, पानपत्र. पंकज, घंटा, पाश, धनु व महाचक्र धारण किये हैं। कानों में कुंडल, सिर पर मुकुट और कटि सूत्र तक लटकती वेणी। देवी को महिषासुर मर्दिनी एवं विन्ध्यवासिनी बताया है। युधिष्ठिर की स्तुति से प्रसन्न होकर भगवती ने निर्विघ्न अज्ञातवास का वर दिया था।[1]

कुरुक्षेत्र में युद्ध आरम्भ होने से पहले श्री कृष्ण ने अर्जुन को दुर्गा स्तुति का परामर्श दिया था। कृष्ण के कहने पर अर्जुन ने रथ से उतर कर हाथ जोड़ कर भगवती की स्तुति की थी। उस स्तुति में भगवती को योगियों को सिद्धि देने वाली, ब्रह्मस्वरूपिणी, सृष्टि की स्थिति व प्रलय के हेतु, सावित्री, मुक्ति स्वरूपा, कालरूपिणी मोहिनी, कान्तिमयी, श्री व जननी आदि विशेषणों से विभूषित किया है। इन विशेषणों में अनेक शब्द परब्रह्म के वाचक है। संसार की आदि महाशक्ति के रूप में देवी की स्तुति की गई है। अर्जुन की स्तुति से प्रसन्न होकर देवी ने उसे शत्रुजय वरदान दिया था।[2] दुर्गा की महादेव की पत्नी के रूप में भी कल्पना की गई है। अनुशासन पर्व के उमामहेश्वर-संवाद आदि में इस तथ्य की उपलब्धि होती है। इस युग में "रामायण" की सीता को भी देवी रूप में मान्यता प्राप्त हुई है।

पुरांण युग में शक्ति उपासना का व्यापक प्रचार एवं प्रसार रहा है। इस व्यापकता के आधार पर इस युग को देवी-उपासना का यौवन काल कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। देवी का मातृ रूप पुराण साहित्य में अधिक विकसित हुआ। मार्कण्डेयपुराण, शिव पुराण, कालिका पुराण, श्रीमद् भागवत, देवी भागवत इत्यादि में देवी महात्मय का विपुल वर्णन हुआ है। देवी भागवत् और मार्कण्डेय पुराण में वर्णित शक्ति के स्वरूपानुसार सर्वत्र ही शक्ति विद्यमान है, उपासकों के गुण, कार्य भेद से उसके ब्रह्मा के समधर्मी विविध रूप बन जाते हैं। जिन्हें महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती इत्मादि की संज्ञा दी जाती है। इस काल में शक्ति के स्वरूप को अधिक स्पष्ट किया गया। वराह पुराण के अनुसार देवी का जन्म ब्रह्मा की प्रार्थना पर

---

1. महाभारत—विराट पर्व, छठा अध्याय।
2. महाभारत—भीष्मपर्व, 23वां अध्याय

हुआ था। कल्प के अन्त में शेष नाग की शैय्या पर सोये भगवान विष्णु के कान की मैल से मधु और कैटभ नामक दो राक्षस उत्पन्न हुए। ब्रह्मा जी विष्णु के नाभिकमल पर नई सृष्टि बनाने के बारे में विचार मग्न थे। दोनों राक्षस ब्रह्मा जी पर आक्रमण करने गये। उस समय ब्रह्मा ने देवी महामाया का स्मरण किया। उन्होंने प्रकट होकर भगवान विष्णु की योगनिद्रा को भंग किया। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार देवी ब्रह्मा, विष्णु, महेश त्रिदेवों ने महिषासुर को मारने के लिये पैदा की। सिंह उस का वाहन बना। नाना प्रकार के अस्त्र भी देवों के द्वारा ही उसे प्रदान किये गये। इसी युग में वह स्वतन्त्र रूप से सृष्टि, स्थिति और प्रलय की अधिष्ठात्री बनीं।

प्राग्मौर्ययुग में मातृ देवी की पूजा से सम्बन्धित विविध बालुआ पत्थर पर अंकित चक्कियां उपलब्ध हुई हैं जिन पर मातृ देवी की मूर्तियां अंकित हैं। वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार, ''इन के ऊपर मातृ देवी की मूर्तियां खुदी हैं जिसके साथ फूल, पत्ती और पशुओं का संयोग भी है अथवा उन पर केवल फूल पत्ती की लत्तरों और जयमतीय रेखोपरेखाओं के चित्र हैं। मोटे तौर पर ज्ञात होता है कि ये सिन्धु घाटी में प्राप्त योनि मूर्तियों की परम्परा में हैं जिनका रूप दो हज़ार वर्षों में कहीं से कहीं पहुंच गया।''[1]

मथुरा, कोशाम्वी, तक्षशिला तथा पटना आदि से प्राप्त देवी की अनेक मूर्तियां मिली हैं जिन के साथ शेर, मृग, भेड़ा, हंस, मोर, सारस इत्यादि पशु-पक्षी भी अंकित हैं। राजघाट एवं तक्षशिला से प्राप्त अधिकांश चक्कियों पर मातृदेवी नामरूप में अंकित हैं और योनि चिन्हों को भी अंकित किया गया है। सम्भवतः तांत्रिक युग की योनि साधना का अनुकरण इस युग में हुआ है। योनि चूंकि प्रजनन शक्ति का प्रतीक है और यह प्रजनन शक्ति स्त्री में ही निहित है। अतः इसी शक्ति के आधार पर स्त्री का महत्व आंका गया होगा। आगे चल कर इसी विश्वास ने ''देवी पूजा'' की सबल पृष्ठ भूमि का कार्य किया होगा।

कुषाणकाल में देवी के विविध रूपों को सप्तमातृका—पूजा के रूप में स्वीकार किया गया। यद्यपि यह कल्पना तन्त्र युग की थी किन्तु इस युग में इन का सम्बन्ध सात देवताओं के साथ स्थापित करके सप्तमातृका की नवीन व्याख्या प्रस्तुत की गई। जैसे ब्रह्म की ब्रह्माणी, विष्णु की वैष्णवी, शिव की महेश्वरी, इन्द्र की इन्द्राणी, कुमार की कौमारी, वराह की वराही, नृसिंह की नारसिंहि और यम की चामुंडा। इस से सम्बन्धित कुषाण काल में एक चित्रपट का वर्णन हुआ है। यद्यपि सिंहवाहिनी दुर्गा की कल्पना इस युग में होने लगी थी किन्तु सब से अधिक लोकप्रिय देवी का महिषासुरमर्दिनी या कात्यायनी रूप ही प्रचलित था। इसी काल में गजलक्ष्मी के रूप की कल्पना भी

---

1. वासुदेव शरण अग्रवाल—भारतीय कला, पृ० 106

की गयी। मथुरा से प्राप्त 'एक स्त्री मूर्ति, हाथों में कमल लिये हुए, कमल के आसन पर कमलों के वन में खड़ी है और दो हाथी अपनी सूंडों में अर्वाजित घट उठाये उसका अभिषेक कर रहे हैं।''[1] इस के अतिरिक्त इस काल के सिक्कों पर भी श्री गजलक्ष्मी के चित्र अंकित है।

कुषाणकालीन इसी परम्परा का विकास गुप्त काल में हुआ। इस युग में सप्तमातृकाओं की स्वतन्त्र उपासना भी की जाने लगी थी। इस युग में दुर्गा के दो रूप मिलते हैं—(1) सिंहवाहिनी, (2) सिंह पर सवार किन्तु गोद में बालक लिये हुए। गुप्त युग के अन्तिम चरण में महिषमर्दिनी का जो रूप कल्पित किया गया उस में वह दो सिंहों के बीच में रखे हुए महिष के सिर पर पैर रखे छः भुजाओं वाली देवी है। गुप्त काल में देवी की पाषाण प्रतिमायें भी बनने लगीं। गुप्त शासकों ने अपने सिक्कों पर भी लक्ष्मी को अंकित करवाया। इन सिक्कों पर लक्ष्मी कमलासन पर बैठी हैं और हाथ में कमल-नाल है। इस युग में देवी के उपासक यंत्र या चक्र के माध्यम से देवी की अराधना करते थे इस का प्रमाण हमें पत्थर तथा धातु के टुकड़ों पर अंकित श्री चक्रों से मिलता है। यद्यपि गुप्त युग में बौद्ध तथा जैन सम्प्रदायों का विशेष प्रचार हो रहा था फिर भी तारा, मरीचि, हरीति आदि देवियों की कल्पना इस ओर संकेत करती है कि शाक्त सम्प्रदाय का प्रभाव उस युग के अन्य सम्प्रदायों पर भी प्रभाव जमाए हुए था। व्रजयानी शाखा में कल्पित देवी उग्रतारा दुर्गा से कहीं कम नहीं है। जैन सम्प्रदाय के लोगों में भी देवी के प्रति आस्था रही है। तत्कालीन समय की उपलब्ध लक्ष्मी प्रतिमाओं के आधार पर इस बात की पुष्टि हो जाती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि देवी-पूजा आदि तथा मध्ययुग दोनों में किसी न किसी रूप में अवश्य होती रही है चाहे वह पूजा ''प्रकृति'' की हो या ''अदिति'' की, ''पृथ्वी'' की हो या ''पृथिवी'' की—इस पूजा के मूल में मुख्य रूप से शक्ति की प्रधानता ही रही है। आदिकाल में पृथ्वी को प्रजनन शक्ति का प्रतीक मान कर उसकी उपासना मातृ देवी के रूप में की गई। तत्कालीन कृषि प्रधान समाज में पृथ्वी और हल को उत्पत्ति का हेतु माना जाता था। प्रजनन शक्ति चूंकि पृथ्वी में निहित है इस लिए पृथ्वी योनि का प्रतीक है। आदि-युगीन इसी योनि साधना को मध्ययुगीन तांत्रिकों ने अपनाया। तन्त्रोपासना में भी श्री यन्त्र अथवा चक्र की उपासना उपर्युक्त साधना का प्रतीक है। कौलाचार और वामचार दोनों सम्प्रदायों में कौलाचार में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में योनि साधना अवश्य हुई है। ''पूर्व कौल श्री चक्र के भीतर

1. वासुदेव शरण अग्रवाल—भारतीय कला, पृ० 379

स्थित योनि की पूजा करते हैं और उत्तर कौल सुन्दर तरुणी की प्रत्यक्ष योनि के पूजक हैं।"[1] इस सम्प्रदाय का मूल रहस्य तंत्र द्वारा देवी की साधना करना था। तंत्राचार्यों ने भी परम्परागत इसी योनि साधना को अपनाया।

योनि साधना के साथ ही लिंग की उपासना भी प्रत्येक युग में होती रही है क्योंकि सृष्टि का सृजनात्मक स्वरूप इन दोनों के संयुक्त रूप में माना जाता है। शैव सम्प्रदाय में शिव की सहचरी पार्वती की पूजा शक्ति के रूप में ही होती रही। जैसे शिव परमपिता थे वैसे ही शक्ति को विश्वमाता और विश्व कल्याणकर्त्री आदि की संज्ञा दी गई। ऐसी मान्यता है कि यही शिव की ऐसी ज्ञानमयी शक्ति है जिसके द्वारा वे सृष्टि का निर्माण एवं ध्वंस करते हैं और यही शक्ति इन कार्यों में विभिन्न अवसरों पर विभिन्न रूप धारण करती है।

शैवमत के सामान्तर शिव-सहचरी की उपासना स्वतन्त्र देवी के रूप में भी होती रही। धीरे-धीरे स्वतन्त्र रूप के उपासकों ने अपना एक अलग मत स्थापित किया जिसमें देवी को परमसत्ता के रूप में स्वीकार किया गया किन्तु देवी का शिव के साथ अभिन्न सम्बन्ध भी सभी को मान्य था।

दूसरी ओर संसार में निर्माणकारी, पालनकर्त्ता एवं संहारकर्त्ता त्रिदेव ब्रह्म, विष्णु, महेश की शक्तियों के रूप में महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली की उपासना का विधान था। इन के अतिरिक्त देवताओं की पत्नियों को भी देवी शक्ति का अंग मान कर पूजा की जाती रही।

आधुनिक युग में देवी-उपासना का प्रचार अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया और स्थिति यह हुई कि देवी किसी देवता विशेष की पत्नी न होकर स्वतन्त्र, सर्व-शक्तिमान और सर्वज्ञ सत्ता के रूप में मान्य हुई। परम्परा से चली आ रही देवियों का आधुनिक युग में नव संस्कार हुआ जिसके अनुसार दुर्गा, काली, सरस्वती इत्यादि शक्तियों को राष्ट्र की सामूहिक शक्ति के रूप में भी स्वीकार किया गया। "दुर्गा की प्रतिमा समस्त शक्ति अर्थात् राष्ट्र शक्ति का प्रतिरूप है। जो व्यक्ति और व्यक्तियों का सम्मिलित रूप राष्ट्र, शारीरिक बल, सम्पत्ति बल और ज्ञान बल के सिंह सदृश है, उस व्यक्ति में और उस राष्ट्र पर दुर्गा (शक्ति) प्रकट होती है। राष्ट्र को पशुबल (कार्तिकेय) और सम्पत्ति बल (लक्ष्मी) और ज्ञान बल (सरस्वती) अवश्य चाहिए, किन्तु बुद्धिहीन बल, सम्पत्ति और ज्ञान निरर्थक ही नहीं, वरन् आत्मसंहार के लिए प्रबल अस्त्र

1. डॉ० द्विजेन्द्र लाल शुक्ल : भारतीय वास्तु शास्त्र— प्रतिमा विज्ञान पृ० 116

सिद्ध होते हैं। इस लिए मनुष्यता के आदि देव, बुद्धि (शरीर) के भार के नीचे सभी विघ्न (चूहे) विवश रहते हैं। सभी दिशाओं में फैली हुई राष्ट्र शक्ति ही, राष्ट्र की, दो, चार, आठ, दश, सहस्र और अनन्त तथा असंख्य भुजायें हैं और सब प्रकार के उपलब्ध अस्त्र-शस्त्र ही दिक्पालों के अस्त्र-शस्त्रादि इसके आयुध हैं। कोई राष्ट्र और व्यक्ति ऐसा नहीं है, जिसका विरोध न हो। यही महिष है, शक्ति जिसका सर्वदा संहार करती रहती है। दुर्गा के रूप में यह भारत शक्ति की उपासना है।''[1]

देवी के उक्त स्वतन्त्र अस्तितव में विशृंखलित समस्त शक्तियों का समूहीकरण करने का प्रचार-प्रसार इस सीमा तक बढ़ गया कि लगभग सम्पूर्ण भारतवर्ष किसी न किसी रूप में शक्ति का उपासक बन गया।

1. जनार्दन मिश्र—भारतीय प्रतीक विद्या, पृ० 177

✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠

तीसरा अध्याय

हिन्दी कवियों की देवी-परिकल्पना

✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠

हिन्दी कवियों की देवी-परिकल्पना

आधुनिक काल से पूर्व के हिन्दी साहित्य में देवी परिकल्पना :

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल से पूर्व के साहित्य में यद्यपि किसी विशेष सम्प्रदाय के प्रचार के रूप में किसी भी साहित्यकार ने 'देवी'' को अपनी लेखनी का आधार नहीं बनाया है फिर भी देवी की काली, दैत्य संहारिणी तथा जगत् पालनकर्त्री के रूप में कहीं न कहीं अराधना अवश्य हुई है।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में निःसन्देह कवि राज्याश्रित हुआ करते थे और मात्र आश्रयदाता का गुणगान करना तथा वीर रस से ओतप्रोत रचनाओं की सृष्टि करना ही उनका धर्म था फिर भी कीर्ति गायन के रूप में किसी न किसी इष्ट देव की उपासना अवश्य हुई है। ''पृथ्वीराज रासो'' के रचयिता चन्दबरदाई ने ग्रन्थ के आरम्भ में मंगलाचरण की परिपाटी को निभाते हुए सरस्वती के निम्न स्वरूप की उपासना की है—

मुत्ताहार विहार सार सबुधा, अबुधा बुधागोपिनी,
श्वेत चीर शरीर नीर गंहरी, गौरी गुणं योगिनी,
वीणा पाणि सुवाणिजा निदधिआ, हंसारसा आसनी,
लवज्जा चिहुरार भार जघना, विघ्नाघना नाशिनी।[1]

कवि ने कदाचित् देवी ''सरस्वती'' के पुराण सम्मत रूप की कल्पना करते हुए उन्हें श्वेत वर्णा, वीणा धारण करने वाली, हंस वाहिनी तथा सब प्रकार से विघ्न-विनाशिनी मानकर अपने ग्रन्थ के निर्विघ्न सम्पूर्ण होने की कामना की है।

इसी ग्रन्थ के चौदहवें खण्ड में पृथ्वीराज जब संयोगिता को यह स्वप्न सुनाता है कि स्वप्न में उसे (संयोगिता को) राक्षस पकड़ कर ले कर जाते हैं—वह चिन्तित हो जाता है। इस दुःस्वप्न के दुष्फल को दूर करने के लिए देवी की अराधना, जाप एवं दस भैंसों की बलि की बात भी कही गई है—

''दिस बलि दिसान दस महिष, अहति मंत अनंत दान दिय।''

---

1. बी० पी० शर्मा (सम्पादक)—पृथ्वीराजरासो (लघु संस्करण), द्वितीय भाग, पृ० 1

उक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि देवी के रौद्र स्वरूप के उपासक बलि चढ़ाकर देवी को प्रसन्न करते हुए विपत्ति-निवारण का प्रयास करते थे। ''पृथ्वीराजरासो'' में ''सरस्वती'' की अराधना कल्याण के निमित्त की गई है। राक्षसी शक्तियों के दमन हेतु, पुराणों के विधान अनुसार बलि चढ़ा कर देवी के रौद्र रूप को भी उपास्य माना है।

हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्यकाल में नारी को शक्ति रूपा मान कर सीता, राधा आदि की उपासना की गई है। पवित्र नदियों जैसे गंगा, यमुना आदि को भी उपास्य माना गया है। भक्तिकाल के सगुण भक्ति धारा की रामाश्रयी शाखा के प्रवर्तक तुलसीदास जी ने ''सीता'' का वर्णन पराशक्ति के रूप में किया है और उस के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

सुन्दरता कहुं सुन्दर करई। छवि गृहंदीप सिख जनु बरई ।।
सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि घटतरो विदेह कुमारी ।।[1]

ऐसा सौन्दर्य किसी दिव्य शक्ति का ही हो सकता है। तुलसीदास के अनुसार सीता आदि शक्ति और संसार की मूल चेतना है। उस के भृकुटी विलास से सृष्टि का सृजन एवं विनाश होता है—

बाम भाग सोभति अनुकूला। आदिसक्ति छविनिधि जगमूला ।।
जासु अंस उपर्जाहि, गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ।।
भृकुटी बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई ।।[2]

सीता पालन करने वाली शक्ति के रूप में अयोध्या काण्ड से लेकर अरण्यकांड तक क्षमा की साक्षात प्रतिमा है। आदि शक्ति सीता पराक्रमी रावण द्वारा अपहृत होकर लंका में दुष्ट संहारक के रूप में प्रवेश करते समय दुर्गा के असुर-संहारक रूप से कहीं भी कम दिखाई नहीं देती। गोस्वामी तुलसीदास ने सीता को कालरात्रि के समान मानकर उन्हें महाकाली से कहीं भी कम स्वीकार नहीं किया है—

काल रात्री निसिचर कुल केरी। तेही सीता पर प्रीति घनेरी ।।[3]

इस प्रकार तुलसीदास ने सीता में देवी के कल्याणकारी और विध्वंसक दोनों रूपों की परिकल्पना की है।

---

1. रामचरितमानस 1/230/7-8
2. वही 1/148/1-2
3. रामचरितमानस 5/40/4

इसी युग में सगुण भक्ति की कृष्णाश्रयी शाखा के कवि सूरदास ने भी राधा को जगत् की आदिशक्ति के रूप में स्वीकार किया है। राधा को शक्तिमान से अभिन्न मानते हुए उन्होंने कहा है—

"राधा माधो दोय नहीं
प्रकृति पुरुष न्यारे नहीं कबहूं वेद पुराण कहत सबई
देह भेद ते भेद जानि कैं मति भ्रम भूले सोई

× × ×

सूरदास राधा माधौ के तन द्वै एकै प्रान।"[1]

सूरदास के अनुसार भक्तों के उद्धार-हेतु शक्ति और शक्तिमान विभिन्न रूप धारण करके अवतार लेते हैं। राधा-कृष्ण की उपर्युक्त अभिन्नता तन्त्रोक्त शिव और शक्ति, प्रकृति और पुरुष के अभिन्न भाव को लिये हुए हैं। राधा यदि पूर्ण शक्ति है तो गोपियां उसकी सहायक शक्तियां हैं। पुष्टिमार्गीय अवधारणा के अनुसार राधा सच्चिदानंद रसमय पूर्ण पुरुष की मूल शक्ति की स्वामिनी है। नन्ददास ने भी राधा को सभी शक्तियों की अधिश्वरी शक्ति और आनन्द स्वरूपा मानते हुए सभी प्रकार के सुखों का प्रकटित रूप माना है—

"निरवधि—नेह अवधि अति प्रगटी
मूरती सब सुखदाई।"[2]

चैतन्य सम्प्रदाय के अनुसार एक ही रस-स्वरूप परमतत्व विविध लीलाएं करने के लिए दो रूप धारण करता है। कृष्ण और राधा सर्वथा अभिन्न रूप हैं। दोनों ही शक्ति एवं शक्तिमान के पूर्ण अंश हैं—

"राधा पूर्ण शक्ति, कृष्ण पूर्ण शक्तिमान,
दुह वस्तु भेद नाहि शास्त्र प्रमाण।"[3]

इसी अद्वैत भाव को निम्बार्क सम्प्रदाय वालों ने स्वीकार किया है—

एक स्वरूप सदा द्वै नाम
आनन्द के आह्लादिनी स्यामा, आह्लादिनी के आनन्द श्याम।[4]

---

1. सूरसागर, पद 6
2. नन्ददास ग्रन्थावली, पृ० 297
3. चैतन्य चरितामृत, पृ० 4
4. महावाणी, सिद्धान्त सुख, 26

राधा बल्लभ सम्प्रदाय में राधा को आनन्द स्वरूपा मान कर परमतत्व रूप में प्रतिष्ठित किया गया है—

"सुनि मेरो वचन छबीली राधा, तें पायो रससिन्धु अगाधा।"[1]

राधा को परमतत्व अथवा स्वतन्त्र शक्ति मानने वालों में ही सखी सम्प्रदाय भी है जो उस के अवतारी रूप को आराध्य मानते हैं।

उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्यकाल में क्रमशः सीता और राधा को शक्ति के रूप में उपास्य माना गया है। इस उपासना के पीछे कदाचित् तत्कालीन एक भाव विशेष रहा होगा जिसके अनुसार अलौकिक शक्तियों के अनुरूप देवता विशेष की अर्द्धांगिनी भी "देवी" के रूप में उपास्य है।

शक्ति का वह रूप जो पुराण सम्मत तथा हमारे अध्ययन का विषय है उसका वर्णन सिख धर्म के दसवें गुरु गोबिन्दसिंह द्वारा रचित "चण्डी-चरित्र प्रथम" एवं "चण्डी चरित्र द्वितीय" में हुआ है। गुरु गोबिन्दसिंह की भगवती चण्डी अपने न्याय समर्थित दण्ड-विधान के द्वारा संसार का मण्डन करने वाली परमसत्ता है जिसकी अद्‌भुत ज्योति ने संसार को प्रकाशित कर रखा है—

"जोत जगमगे जगति में
चण्ड मुण्ड प्रचण्ड
भुज दण्डन दण्डीन असुर
मण्डन भुई नवखण्ड।"[2]

देवी के दिव्य स्वरूप का वर्णन करते हुए उन्होंने उसके आलौलिक गुणों का वर्णन इन शब्दों में किया है—

पवित्रो पुनीता पुराणों परेयं।
प्रभो पूरणो पारब्रह्मो अजयं॥
अरूपं अनूपं अनामं अठामं।
अभयं अजोतं महाधर्म धायं॥[3]

अर्थात् शक्ति परम पवित्र है, पुराणों से परे अपने में पूर्ण परब्रह्म एवं अजेय है। उसका कोई नाम, कोई स्थान नहीं है, वह अतुलनीय है। "चण्डी चरित्र प्रथम" में

1. ललित चरण गोस्वामी (सम्पादक)—हित चौरासी, पृ० 18
2. दशम ग्रन्थ, प्रथम भाग, पृ० 74
3. वही वही, पृ० 118

चण्डी के प्रकट होने से लेकर शुंभ-निशुम्भ, धूम्रलोचन, चण्डमुण्ड, रक्तबीज इत्यादि आसुरी शक्तियों के वध की गाथा तथा उसके पश्चात् शान्ति स्थापना का वर्णन है। "चण्डी चरित्र द्वितीय" में अष्टभुजी, सिंहवाहिनी दुर्गा का महिषासुर के साथ युद्ध एवं उसका वध तथा अन्य असुरों का वध वर्णित है और अन्त में देवी महात्म्य दिया गया है। गुरु गोविन्दसिंह द्वारा निर्धारित उक्त स्वरूप पुराणों में वर्णित दुर्गा के स्वरूप से कहीं भी अलग नहीं बैठता। यद्यपि इन ग्रन्थों में वर्णित शक्ति के विभिन्न रूप एवं कार्यकलाप पौराणिक संदर्भों से सम्बद्ध हैं फिर भी यह मानना कि यह वर्णन पूर्णतया पौराणिक है भ्रान्तिपूर्ण है। क्योंकि चण्डी चरित्रों के रचयिता ने तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर भगवती चण्डी को युद्ध-देवी के रूप में प्रतिष्ठित किया है। उन्होंने धर्म युद्ध की इच्छा से युगों से चली आ रही परम्परा का निर्वाह करते हुए भगवती चण्डी के रूप में शक्ति का आह्वान किया है। डॉ० महीपसिंह के अनुसार "चण्डी चरित्र" का रचयिता जानता था कि बाह्य उपकरणों की उपस्थिति में भी युद्ध हारे जा सकते हैं और इन उपकरणों के अभाव में भी युद्ध जीते जा सकते हैं और वह वस्तु जो संघर्ष में विजय प्राप्त कराती है इन बाह्य उपकरणों में न होकर हृदय में होती है।[1]

हिन्दी साहित्य के उत्तरमध्यकाल में बिहारी ने भी भक्तिकालीन कवियों की तरह राधा को स्वतन्त्र शक्ति मान कर उसकी अराधना करते हुए अपनी "सतसई" के आरम्भ में कहा है—

"मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोई।
जा तन की झाईं परैं श्याम हरित द्युति होई॥"[2]

राधा का महत्व कृष्ण के साथ तो था ही किन्तु वह देवी के रूप में स्वतन्त्र शक्ति भी मानी जाने लगी थी। बिहारी उस स्वतन्त्र शक्ति "राधा" से बाधायें दूर करने की प्रार्थना करता है जिस के शरीर की छाया मात्र से ही कृष्ण 'हरितद्युति" वाले हो जाते हैं। भूषण, मतिराम तथा मान इत्यादि कवियों ने अपने काव्य मे देवी की अराधना की है और उसे महिषासुरमर्दिनी, काली तथा मधुकैटभ संहारिणी इत्यादि रूपों में चित्रित किया है। भूषण देवी की अराधना करते हुए कहते हैं—

"जय जयति जय आदि शक्ति जय कलिकपार्दिनी।
जय मधु कैटभ दलिनी जय महिषिविमर्दिनी॥"[3]

---

1. डॉ० महीपसिंह—गुरू गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता, पृ० 115.
2. बिहारी—सतसई, दोहा।
3. भूषण ग्रन्थावली, पृ० 1

मतिराम ने भी देवी की अराधना की है—

पियुष पयोधि मद्ध मनिन सौं बद्ध भूमि,
रोध सौं रूचिर रूचि रोचक रवन में।
कामतरू विपिन कदम्ब उपवन सीरो,
सुरभि पवन डोले मृदु सी गवन में॥
चिंतामनि मण्डप बिराजै जगदम्ब सदा,
सावधान "मतिराम" सेवक सेवन में।
लंपट लुबुध मन भद में भंवत कहा,
करि भूरि भावना भवानी के भवन में॥[1]

किन्तु इस एक छन्द के आधार पर हम मतिराम को देवी का अनन्य उपासक नहीं मान सकते।

बलि द्वारा देवी को प्रसन्न करने की परम्परा का निर्वाह आदि-काल की तरह रीतिकाल में भी हुआ है। कवि सुन्दरदास की निम्न पंक्तियां इस तथ्य की पुष्टि करती हैं—

केचित देवी शक्ति बनावै, जीव हतनकरि ताहि चढ़ावै।[2]

उत्तरमध्यकाल में यद्यपि देवी का वर्णन छुटपुट रूप में कई कवियों ने किया है किन्तु देवी को स्वतन्त्र शक्ति मानते हुए स्वतन्त्र रूप से किसी भी कृति का सृजन नहीं हुआ। इस काल में चूंकि साहित्यकारों का उद्देश्य जीविकोपार्जन तथा प्रसिद्धि-प्राप्ति का था अतः वे अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिए मात्र ऐसे साहित्य का सृजन करते थे जिससे उनकी (आश्रयदाताओं) आत्मतुष्टि कर सकें।

आधुनिक हिन्दी-साहित्य में देवी-परिकल्पना

आधुनिक कवियों ने नारी-शक्ति को समाज-सेवा, विश्व-उत्थान और राष्ट्रीय-भावना में निहित माना है। उन्होंने संसार में मां का स्थान पिता से भी बढ़कर माना है। मातृरूपा नारी ही संसार की संचालिका है। वैदेही बनवास में हरिऔध जी ने स्पष्ट कहा है—

जननी केवल है जन-जननी ही नहीं
उसका पद है जीवन का भी जनयिता
उस में है वह शक्ति सुतचरित्र सृजन की
नहीं पा सका जिसे प्रकृति कर से पिता।[3]

---

1. मतिराम-ललितललाम, पृ० 379
2. सुन्दरदास ग्रन्थावली, पृ० 90
3. अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध—वैदेही बनवास, पृ० 152

सामान्य माता की तरह वह विश्व संचालिका शक्ति सुत्त-स्वरूपी विश्व का भरण-पोषण करती है और कल्याणमयी बनकर उसका मार्ग प्रशस्त करती है। जिस राधा एवम् सीता को भक्तिकालीन कवियों ने स्वतन्त्र शक्ति मानकर उसकी अराधना की है हरिऔध ने भी उसी शक्ति को समाज सेवा में निरत परम करूणामय रूप में प्रकट किया है। "वैदेही बनवास" में सीता को अत्यन्त दयामयी और परोपकार की प्रतिमूर्ति के रूप में चित्रित किया है—

"जनक नन्दिनी जैसी सरला कोमला"

यही शक्ति पुरुष की क्रियाशीलता है जो उसे जन-सेवा की प्रेरणा देती है—

जिसकी तुम हो शक्ति स्वरूपा, जो तुम से पौरूष पाता,
जिसकी सिद्धिदायिनी तुम हो, तुम सच्ची गृहिणी तुम हो।[1]

पारम्परिक धारणा कि शक्ति के अभाव में शिव शव हो जाते हैं—का गुप्त जी ने "स्वदेश संगीत" में बड़े सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है—

शिव शक्तिहीन शव हो, जो छोड़ दे भवानी[2]—

अर्थात् भवानी को छोड़कर शिव कोई भी कल्याणकार्य नहीं कर सकते।

"यशोधरा" में गुप्त जी ने यशोधरा को गौतम की प्रेरणा शक्ति के रूप में चित्रित किया है और उसे ही वह माध्यम माना है जिस से बुद्ध को सिद्धत्व प्राप्त हुआ। उनके अनुसार कदाचित् यशोधरा के अभाव में बुद्ध पूर्णत्व को न प्राप्त कर पाते। तभी तो उन्होंने कहा है—

"गोपा बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझ को—"[3]

मातृ शक्ति के रूप में चित्रित यशोधरा इतनी महान् है कि उसे पुत्र के सुख के सामने पति का महत्त्व नगण्य दिखाई देता है। वह केवल राहुल के प्रति ही नहीं अपितु सम्पूर्ण राहुल रूपी संसार के प्रति अपने दायित्व को विश्वपालिका शक्ति के रूप में अभिव्यक्त करती है—

"मेरा शिशु संसार वह दूध पिये परिपुष्ट हों,
पानी के ही पात्र तुम प्रभो तुष्ट हों या रुष्ट हों।"[4]

---

1. अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध—वैदेही बनवास, पृ० 71
2. मैथिलीशरण गुप्त—स्वदेश संगीत, पृ० 87
3. मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा
4. वही वही, पृ० 59

"द्वापर" में तो कवि राधा और कृष्ण के समन्वित रूप की बात करता है—

"एक मूर्ति, आधे में राधा
आधे में हरि पूरे"[1]

द्विवेदी युग के पश्चात् छायावादी कवियों ने भी देवी के विराट् रूप की आराधना की है। कवि उस विराट् रूप के साथ तादात्म्य स्थापित करते हुए सहचरी, मां, प्राण, देवि इत्यादि सम्बोधनों से उसे पुकारता है। छायावादी साहित्य का विश्लेषण करने से कहना अनुचित न होगा कि तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप छायावादी साहित्य शक्ति-पुंज रहा है। भले ही प्रसाद, पन्त और निराला ने शक्ति साहित्य की रचना की प्रेरणा बंगाल के साहित्यकारों से ली क्योंकि बंगाल शक्ति उपासकों का मुख्य केन्द्र रहा है किन्तु डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार "कामायनी, तुलसीदास, राम की शक्ति-पूजा में शक्ति और मानवीय चेतना का जैसा आख्यान है वैसा बंगला काव्य या रविन्द्रनाथ में भी नहीं मिलता।"[2]

जयशंकर प्रसाद की "कामायनी" में शिव और शक्ति के समन्वित रूप की कल्पना है। प्रसाद चूंकि प्रत्याभिज्ञादर्शन के अनुयायी थे—जिसके अनुसार शिव-शक्ति का समन्वित रूप ही परमतत्व है। चित, आनन्द इच्छा, ज्ञान और क्रिया उस परमतत्व की पांच शक्तियां है। जगत् के सृजन की इच्छा होते ही परमतत्व के दो रूप हो जाते हैं—शिव और शक्ति। "शाक्त दृष्टिकोण से नित्य लीलामयी शक्ति है। फिर शक्ति तो शिव ही है इसलिए वह लीलातीत भी है। इस दृष्टि से लीलातीत स्थिति भी लीला का ही अंग है। इस विश्व नाटक के जो सूत्रधार हैं वही नट हैं, प्रेक्षक भी वही हैं। नाटक-रचना भी उन्होंने की है, अभिनय भी विभिन्न रूप धारण करते हुए वहीं करते हैं—सब कुछ करते हुए वे कुछ नहीं करते और कुछ न करके भी क्रियाओं के एकमात्र कर्ता है। परमयोग भी वही हैं और परमत्याग भी वही हैं।"[3] कामायनी में शक्ति मण्डित इसी शिव के लिए चित्ति, महाचित्ति, इत्यादि नामों का व्यवहार किया गया है। यही चित्ति शक्ति ही सृष्टि की उत्पत्ति का कारण है—

"कर रही लीलामय आनन्द,
महाचित्ति सजग हुई सी व्यक्त;
विश्व का उन्मीलन अभिराम,
इसी में सब होते अनुरक्त।"[4]

---

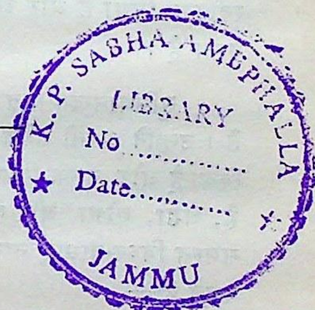
1. मैथिलीशरण गुप्त—द्वापर, पृ० 203
2. डॉ० राम स्वरूप चतुर्वेदी—कविता यात्रा : रत्नाकर से रघुवीर सहाय, पृ० 19
3. गोपीनाथ कविराज—तांत्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि, पृ० 6
4. जयशकर प्रसाद—कामायानी (श्रद्धा सर्ग) पृ० 61

कामायनी में प्रसाद ने श्रद्धा को मनु की प्रेरणादायिनी और सिद्धिदायिका शक्ति माना है. वह इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया के समन्वित रूप में ही मनु को सन्तुलित जीवन की प्रेरणा देती है और समस्त जगत् में बिखरी हुई शक्ति के सदुपयोग और उसमें संतुलन स्थापित करने की प्रेरणा देती हुई कहती है—

शक्ति के विद्युतकण, जो व्यस्त,
विकल बिखरे हैं, हो निरूपाय;
समन्वय उसका करें समस्त,
विजयिनी मानवता हो जाए ।[1]

श्रद्धा के स्मित-सूत्र में बंध कर इच्छा, ज्ञान और कर्म दीप्त हो उठते हैं और श्रद्धा विश्व सुन्दरी का रूप धारण कर लेती है। उसके इसी रूप में त्रिपुर विनाशिनी शिव की शक्ति अवतारणा की गई है। समग्र जड़-चेतन में यही चित्ति-शक्ति सुशोभित होती है—

"स्पन्दित सा पुरुष पुरातन;
देखता मानसी गौरी—"[2]



माया तथा प्रकृति को भी प्रसाद ने शक्ति-रूपा माना है—

"घूम रही है यहां चतुर्दिक्,
चल चित्रों सी संसृति छाया;
जिस आलोक बिन्दु को घेरे,
वह बैठी मुस्क्याती माया।"[3]

उन्होंने माया को ब्रह्म की शक्ति के रूप में स्वीकार किया है और इस बात का प्रतिपादन किया है कि समस्त परिवर्तनशीलता इसी शक्ति से हो रही है—

"प्रखर विनाशशील नर्तन में
विपुल विश्व की माया
क्षण-क्षण होती प्रकट नवीना
बनकर उसकी काया।"[4]

---

1. जयशंकर प्रसाद—कामायनी (श्रद्धा सर्ग), पृ० 67
2. वही वही (आनन्द सर्ग), पृ० 302
3. वही वही (रहस्य सर्ग), पृ० 272
4. वही वही (कर्म सर्ग), पृ० 131

प्रकृति को परमतत्व की सहचरी माना गया है। वह परमतत्व उसे ही अपना माध्यम बना कर समस्त क्रीड़ाएं सम्पन्न करता है। शिव-शक्ति का यामल परिणाम ही सृष्टि है, जिसके कारण शक्ति एवम् शक्तिमान ''जननी'' और ''जनक'' की संज्ञा पाते हैं। जिस प्रकृति को वह अपनी सहचरी बनाते हैं वह शिव से भिन्न नहीं है—

देके उषा-पट प्रकृति को, हो बनते सहचरी
भाल के कुंकुम अरुण को दे दिया बिन्दी खरी
नित्य नूतन रूप हो उसका बनाकर देखते
वह तुम्हें है देखती तुम यामल मिल कर खेलते।[1]

प्रकृति मात्र उस परमतत्व की सहचरी ही नहीं बल्कि उसकी विभूति भी है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में दाण्डयायन कहता है—'मेरी आवश्यकताएं परमात्मा की विभूति प्रकृति पूरी करती है।[2]

जयशंकर प्रसाद ने इच्छा, ज्ञान और क्रिया के संयुक्त रूप को मूल रूप में शक्ति स्वीकार किया है और इसी समन्वित शक्ति को जागृत करने में विश्व-कल्याण निहित माना है।

सुमित्रानन्दन पन्त ने भी परम सत्ता को मातृ शक्ति के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने अपनी अनेक रचनाओं में उस परम शक्ति को ''मां'' शब्द से सम्बोधित किया है और उसके दिव्य एवं उदात स्वरूप की कल्पना की है—जो अत्यन्त आकर्षक है, श्रद्धा, शोभा और करुणा की प्रतिमूर्ति है जिस के दर्शन प्राप्त कर जीवन की समस्त विघ्न-बाधाएं नष्ट हो जाती हैं। पन्त इसी शक्ति की सर्वव्यापकता मानते हुए कहते हैं—

मां! तू क्या लघु कण में भी है?
तब क्या मैं ही था अज्ञान?[3]

यही एक शक्ति समस्त विश्व के विकास का हेतु है—

एक शक्ति से, कहते, जग प्रपंच यह विकसित,
एक ज्योतिकर से समस्त जड़ चेतन निर्मित॥[4]

---

1. जयशंकर प्रसाद—कानन कुसुम, पृ० 11
2. वही —चन्द्र गुप्त, पृ० 96
3. सुमित्रानन्दन पन्त—वीणा, पृ० 64
4. सुमित्रानन्दन पन्त—ग्राम्या, पृ० 69

"सृजन शक्तियां" कविता में समस्त दिव्य शक्तियों का अभिवादन करते हुए कवि ने लक्ष्मी, सरस्वती, माहेश्वरी, अदिति, काली, इला, वाणी, दिति, दक्षिणा इत्यादि विविध देवियों की स्तुति की है ।[1]

सम्भवतः कवि पन्त पर अरविन्द दर्शन का प्रभाव रहा है जिसके अनुसार "ब्रह्म में एक ऐसी चेतना अन्तर्निहित है जो अपनी शक्ति से विभिन्न रूपों और जगतों की सृष्टि करती है ।...यही वह शक्ति है जो सभी मनुष्यों, प्राणियों, पौधों तथा धातुओं में एवम् चेतन तथा सजीव वस्तुओं में और अचेतन तथा निर्जीव प्रतीत होने वाली वस्तु में भी कार्य करती है ।"[2]

इसी परमसत्ता के विराट स्वरूप को अंकित करते हुए पन्त ने "उत्तरा" में कहा है—

"उसका वक्षस्थल विशाल सिन्धु सदृश है, उसके धुरन्धर कन्धों पर विश्व का भार टिका हुआ है, उसकी करुणा की प्रतीक भुजाएं अत्यन्त लम्बी हैं, उसके हाथों में वरदातृ शक्ति है, वह परमशक्ति अपने सुन्दर धनुष्बाण से मृत्यु का कलुष हर लेती है । कवि विश्व हृदय शतदल पर सुशोभित इस दिव्य परात्पर शक्ति का मुक्त कण्ठ से अभिनन्दन करता है ।"[3]

मध्यकालीन परिपाटी का निर्वाह करते हुए कवि पन्त ने सीता को भी कल्याण-कारिणी शक्ति के रूप में स्वीकार किया है । रावण भी इसी कारण उसे प्राप्त करना चाहता था—उस सीता को पन्त ने साधारण मानवी न मानकर उर्ध्वमना स्वीकार किया है—

क्या अशोक वन है क्या सीता
वह सुख वैभव स्वर्ग, और यह
जन मंगल की मूर्ति पुनीता ।[4]

---

1. सुमित्रानन्दन पन्त—स्वर्णधूलि, पृ० 16
2. 'It is the same that works in all men and in the animal, in the Plants and in the metal, in conscious and living things and in the things appearing to be in conscient and in animate.' Aurobindo : The Synthesis of Yoga, p. 287.
3. सुमित्रानन्दन पन्त—उत्तरा, पृ०119
4. सुमित्रानन्दन पन्त—स्वर्ण किरण, पृ० 150

रावण जिस का जीवन दर्प-दलित था—उस पावन हृदय वाली सीता को पाना चाहता था, जिसमें समस्त संसार का आश्रय छिपा हुआ है। वह कह उठता है—

मुझे चाहिए, देवि यह हृदय,
निखिल सृष्टि का जिस में आशय।
प्रथम बार वह हृदय धरा पर,
आज हुआ अवतरित कि विकसित।[1]

अन्तर्मन में स्थापित इसी मातृ मूर्ति के प्रति पन्त अनन्य आस्थावान हैं एवं उस के पावन-चरणों में तन-मन-धन से समर्पित हैं—

दिव्यानने
दिव्यमने

× × ×

दिव्य भक्ति
तुम्ही शक्ति
ज्ञान ग्रथित
सदनुरक्ति
चिर पावन
सृजन चरण
अर्पित तन
मन जीवन।[2]

इसी मातृ चेतना के सम्बन्ध में श्री अरविन्द ने कहा है "भगवती मां भगवान की वह चित्त शक्ति है जो समस्त वस्तुओं की जननी है। ईश्वर भी भगवती माता से ही प्रकट होता है।"[3]

---

1. सुमित्रानन्दन पन्त—स्वर्ण किरण, पृ० 161
2. वही —स्वर्णधूलि, पृ० 44-45
3. The Divine mother is the consciousness and the force of the Divine which is the Mother of all things. She is divine in its consciousness force. The Ishwara as lord of the casmos does come out of the Mother."

   Aurobindo : Sri Aurobindo on Himself and on the mother, 1953, P. 446.

अरविन्द दर्शन के अनुरूप ही पन्त ने इस मातृशक्ति को मां, पराशक्ति, परमाशक्ति, विज्ञानमयी शक्ति तथा भगवती शक्ति आदि विविध सम्बोधन दिए हैं—

आओ बन्दन करें आज उस परम शक्ति का,
क्रीडानक यह विश्व महत् जिस की इच्छा का ।[1]

शाक्त तन्त्रोक्त शिव-शक्ति के अभिन्नत्व को पन्त भी स्वीकार करते हैं। "लोकायतन" में वे स्पष्ट कहते हैं—

देवि, तुम्हारे सित गति-प्रिय पद छू कर,
बनता निष्क्रिय जीवन—शव शिव चेतन

× × ×

जड़ शव हो फिर से शिव, चित शक्ति समन्वित ।[2]

छायावादी कवि चतुष्ट्य में कविवर निराला भी ऐसे कवि थे जिन्होंने अपने काव्य में शक्ति के विविध रूपों की परिकल्पना की है। शक्ति, महाशक्ति, महामाया आदि विविध संज्ञाओं से विभूषित उस परमसत्ता का निराला ने भी शक्तिमान के साथ अभिन्नत्व स्थापित किया है—

"ज्ञान तन्तु तुम, जग अज्ञान मन
शव-शिव-शक्ति महान्"

कवि सृष्टि को भी उसी महाशक्ति की इच्छा का परिणाम मानता है—"उसी महाशक्ति की कल्पना से ही यह सारा संसार दृष्टिगोचर हो रहा है।—महाशक्ति की कल्पना अनादि और अनन्त है। पहर, दिन, पक्ष, मास, अयन, वर्ष. युग-युगान्तर आदि उस अनन्त प्रवाह के समय-सूचक खण्ड से कर दिए गए हैं।[3]

अतः यह शक्ति सर्वव्यापक है। इसके उद्‌बोधन के लिए साधना की आवश्यकता ठीक उसी प्रकार पड़ती है जिस प्रकार अग्नि को प्रकट करने के लिए घर्षण की क्रिया की जाती है और इसी क्रिया के परिणाम स्वरुप मानव समस्त भौतिक व्यवधानों पर विजय प्राप्त कर ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करता हुआ उसी शक्ति के साथ एकाकार होने का प्रयास करता है जिसे प्राप्त कर लेने के बाद कोई कामना शेष नहीं रहती—

---

1. पन्त : शिल्पी
2. पन्त : लोकायतन, पृ०-232
3. निराला रचनावली, भाग-6, पृ०-38

तुम्ही रहो, मिल जाय जगत सब
एक तत्व में, ज्यों भव-कलरव,
ज्योत्सनामयि, तम को किरणासव
पिला, मिला उर लो।[1]

कवि उस महाशक्ति से प्रार्थना करता है कि वह उसे इतनी शक्ति दे कि काल भी उसे भयभीत न कर सके—

"जीवन के रथ पर चढ़ कर,
सदा मृत्यु पथ पर बढ़ कर,
महाकाल के खरतर शर सह
सकूं, मुझे तूं कर दृढ़तर।"[2]

कवि जगत् जननी से सभी व्यवधानों को विनष्ट करने की प्रार्थना करता हुआ उसी में विलीन हो जाना चाहता है—

"काट अन्ध-उर के बन्धन-स्तर
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर
कलुष भेद, तमहर, प्रकाश भर
जगमग जग कर दे"[3]

निराला ने मुख्यत: शक्ति को सरस्वती और दुर्गा के रूप ही स्वीकार किया है। सरस्वती से सम्बन्धित उन्होंने बहुत-सी मुक्तक रचनाएं की हैं किन्तु दुर्गा का प्रतीकात्मक चित्रण करते हुए तथा उसे आंतरिक शक्ति के साथ सम्बद्ध करते हुए उन्होंने "राम की शक्ति-पूजा" का सृजन किया।

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त छायावाद में महादेवी वर्मा और रामकुमार वर्मा का नाम भी विशेष रूप से चर्चित है। यद्यपि महादेवी भी आस्थावादी कवियत्री हैं परन्तु उन्होंने भी अज्ञात सत्ता को प्रतिलक्षित कर प्राय सभी रचनाओं में उसी परमसत्ता के प्रति आस्था व्यक्त की है। किन्तु उन की सभी रचनाओं में वह सत्ता पुरुष रूप मे ही स्वीकृत है, मां रूप में कहीं भी नहीं।

रामकुमार वर्मा ने भी प्रकृति के कण-कण में ईश्वरीय शक्ति के दर्शन अवश्य किए हैं किन्तु उस परमतत्व को उन्होंने भी पुलिङ्ग रूप में ही चित्रित किया है। □

---

1. निराला रचनावली, भाग-1, पृ०-210
2. निराला रचनावली, भाग-1, पृ०-209
3. —वही— भाग-1, पृ०-210

चौथा अध्याय

निराला साहित्य में देवी-परिकल्पना

निराला साहित्य में देवी-परिकल्पना

महाप्राण निराला ने काव्य, निबन्ध, उपन्यास, कहानी और नाट्य-कविता आदि साहित्यिक विधाओं में जीवनानुभव. जीवन-दर्शन तथा जनपीड़ा को व्यक्त किया। कविता के क्षेत्र में निराला एक जन-कवि के रूप में दिखाई पड़ते हैं जिसे आत्मगत ही नहीं वस्तुगत सत्य की भी गहरी पहचान है। यथार्थ के स्तर पर जहां निराला ने "भिक्षुक", "वह तोड़ती पत्थर", "कुकरमुत्ता", "मंहगू महंगा रहा", जैसी कविताओं की रचना की वहीं परिस्थितियों के बदलाव के लिए "बादल राग" जैसी कविताओं में कृषक वर्ग के हित में बादल का आह्वान किया। निराला पौरुष के कवि हैं। परिस्थितियों से निरस्त हो कर हार मान लेने वाले नहीं हैं। विपरीत परिस्थितियां निराश अवश्य करती हैं किन्तु एक मार्ग अवश्य बचा रहता है जहां निराला शक्ति-पूजा कर के शक्ति और विश्वास को पुनः लौटा लाते हैं। जब एकान्त में होते हैं तो शताब्दियों से कुचले, शोषित, दरिद्र जनों के लिए शक्ति के विभिन्न रूपों का आह्वान करते हैं। निराला शक्ति के सम्मुख प्रार्थनारत होते हैं किन्तु उनकी प्रार्थना वैयक्तिक मुक्ति की नहीं है, वह है सामूहिक मुक्ति की।

कविता के क्षेत्र में निराला के प्रार्थनापरक गीतों तथा लम्बी कविता "राम की शक्ति-पूजा" में उन के शक्ति-विषयक भाव या विचार मिलते हैं। निराला के शक्ति-विषयक विचारों का स्रोत रामकृष्णमठ के स्वामी सारदानन्द जी के विचार हैं जिन का उल्लेख उन्होंने अपने निबन्ध "शक्ति-परिचय" में किया है—"प्राचीन होने पर भी शक्ति नवीन है। गुप्त भाव से व्यक्त होने पर किसी नवीन रूप में ही उसके दर्शन होते हैं। शक्ति का न तो ह्रास ही है और न वृद्धि, लोप का तो नाम भी न लीजिए। यह हमारी दृष्टि का आवरण है जो हम कभी तो उस का ह्रास, कभी वृद्धि और कभी-कभी उसका लोप तक अपने कल्पना के नेत्रों से देख डालते हैं। एक ही शक्ति न जाने कितनी बार गुप्त होकर व्यक्त रूप को प्राप्त हो रही है। जब-जब व्यक्त हुई—तब तब इसका नया ही आकार देखने को मिला, जब-जब गुप्त हुई तब-तब इसके लुप्त हो जाने का अनुभव हुआ। संसार की कितनी ही जातियों, महादेशों, समाजों और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के जनन, उन्नयन और अवपात में शक्ति का यही खेल जारी है। जगद्दात्री महामाया के स्वरूप तत्त्व के दर्शनाभिलाषी भगवान श्री रामकृष्ण को महामाया ने दिखलाया—एक परम रूपवती स्त्री को सर्वांग सुन्दर पुत्र का प्रसव और उसका पालन-पोषण करते हुए बड़ा ही आनन्द मिल रहा है, फिर कुछ समय में

हंसते हुए उसने पुत्र का संहार कर डाला। शक्तितत्व की समालोचना करने पर, उसके लिए एक ही आधार में प्रसव और प्रलयकारी विरोधी गुणों का समावेश हो जाता है। आजकल के दार्शनिकों का भी यही सिद्धान्त है कि शक्ति का न नाश है और न ह्रास ही। हां, गुप्त और अव्यक्त भाव अवश्य होता है।

यही बात भावराज्य में भी दीख पड़ती है। भावराज्य या सूक्ष्म मनोराज्य में शक्ति का यही खेल रहा है। जिस भाव से किसी एक जाति का भाव-अंकुर वर्द्धित हुआ है, उसका उन्मेष, उसका नाश हो जाने पर, किसी दूसरी जाति या समाज में होता है। चिरकाल तक गुप्त रूप से अवस्थित शक्ति का विकास जिस शरीर और मन के अवलम्ब से होता है, या जिन्होंने अपनी अन्तरात्मा में प्रकाशित शक्ति का पर्यवेक्षण किया, उन्हें हम श्रद्धा की अंजलि बांधकर उच्चासन पर बैठाते हैं। वे जड़राज्य के आविष्कारक, मनोराज्य के दार्शनिक और धर्मराज्य के मुक्त स्वभाव ऋषि अथवा शुद्ध सत्त्वविग्रह अवतार कहलाते हैं।

पंचेन्द्रियों द्वारा किसी वस्तु का स्पर्श या मन द्वारा किसी विषय की कल्पना शक्ति ही की सहायता से की जा सकती है। शक्ति के अधिकार के भीतर ही कर्त्ता, कर्म और क्रिया अपने दांव-पेंच दिखा सकते हैं। उसके बाहर किसी की पहुंच नहीं है।

यद्यपि शक्ति ही शक्ति से लड़ती है और शक्ति ही शक्ति से हारती है, और कभी-कभी देवी शक्ति को भी आसुरी शक्ति से नीचा देखना पड़ता है—जाग्रत के ज्ञान को सुषुप्ति के मोह से दब जाना पड़ता है, तथापि आध्यात्मिक शक्ति के पूर्णाधार महापुरुष और भारत के अवतार शक्ति के अहाते के बाहर भी चले गये हैं और अपने उसी केन्द्र को उन्होंने सारी शक्तियों पर विजय-प्राप्ति का फल बताया है।

शक्ति की सीमा को पार करने के लिए महापुरुषों ने कितने ही उपाय बताये हैं। प्रत्येक शास्त्र के आचार्य ने अपने मनोनुकूल मार्ग से चलकर मंजिल पूरी की और अपनी सफलता के साधन हमारे उपकारार्थ हमें दे गए। हठयोग कुछ सिखाता है, तन्त्रशास्त्र में उससे भिन्न बात पाई जाती है, दर्शन दूसरे ही पथ के निर्देशक हैं, भक्तियोग में अन्य उपाय की उद्‌भावना हुई है। भाव भी अनेक बतलाए गये हैं—ये सभी मार्ग ठीक हैं और इनका अन्त एक ही जगह पर होता है।—विरोधी भावों के रहने पर भी संसार के मूल में सर्वव्यापिनी एक ही शक्ति की क्रीड़ा हो रही है।

संचित भावशक्ति के आगे—समरकुशल, भावाश्रय मनुष्य के सामने, किसी अपर शक्ति की हकूमत नहीं चलती चाहे वह बाहर से आवे या भीतर से। सच तो यह है कि जिस में भावशक्ति या धारणाशक्ति कम है वह अपने से अधिक शक्तिशाली के साथ आदेश का भाव नहीं रख सकता। जब कि कोई भी मनुष्य या सृष्टि का

कोई भी जीव प्रकृति से परे नहीं, नहीं तो उसे शास्त्रोक्त भाव-शक्ति या धारणाशक्ति अथवा चेतनशक्ति की सहायता से लेना असम्भव नहीं।''[1]

एक अन्य निबन्ध ''कला और देवियां'' में निराला ने शक्ति के लक्ष्मी और सरस्वती स्वरूप पर विचार किया है। लक्ष्मी दिव्य भाव तथा ऐश्वर्य सम्पन्न है। नारी को गृहलक्ष्मी कहकर इसी महिमा में प्रत्यक्ष किया गया है। लक्ष्मी और उर्वशी दोनों का उद्भव ज्ञान रूपी सागर को मथने से हुआ है। उर्वशी कला गति और गीति की प्रतिमा है। इस उत्कर्ष में भी हम नारी को प्रत्यक्ष करते हैं। लक्ष्मी और उर्वशी के गुण प्रत्येक नारी में मिले हुए हैं। नारी का प्रिया-भाव उर्वशी का भाव है। ''प्रिया-भाव में गीति और गति के साथ रचना भी आती है। वह ललित वाक्य-रचना हो या छन्द रचना। यह शब्दों के साथ मिली हुई है और ताल के साथ भी। शब्दों के साथ वह काव्य है और ताल के साथ नृत्य। उर्वशी के इसी भाव का आरोप सरस्वती पर किया गया है। इसलिए कि भाव में शुद्धता रहे।

लक्ष्मी से नारी भाव की महिमा व्यंजित होती है। जिस सुलक्षणता से वह गृह की कर्त्री है ऐश्वर्य को स्थितिशील करती है, दूसरों को भोजन, पान और स्नेह देकर तृप्त करती है, गृह के समस्त वातावरण को शान्ति से ढके हुए, चारुता देती हुई पति तथा दूसरों की दृष्टि में महिमा की मूर्ति बन कर आती है, वह उसका लक्ष्मी भाव है। रक्षा-सेवा आदि इसी के अन्तर्गत है। इसी का विकास मातृत्व में होता है। विश्व का पालन करने वाले विष्णु की शक्ति लक्ष्मी इसी मातृत्व में पूर्णत्व प्राप्त करती है।''[2]

''शून्य और शक्ति'' निबन्ध में निराला ने शक्ति की व्याख्या शून्य के संदर्भ में की है। उद्भव, स्थिति और प्रलय का शून्य ही मूल रहस्य है। केवल शक्ति संसार को शून्य से अलग किए है—शून्य ही तमाम शब्द विद्या का केन्द्र-स्थल है। शून्य और शक्ति अभेद है। फर्क इतना ही है कि जब शून्य में स्थिति है तब शक्ति का ज्ञान नहीं है क्योंकि ''वह नहीं कांपता'' सिद्ध है और जब शक्ति का परिचय है, तब शून्य का ज्ञान नहीं क्योंकि ''वह कांपता है'' सिद्ध है। विकास में शक्ति का ही अस्तित्व है। इस शक्ति का नियामक है ''हम'', पांच सौ बत्तियों की रोशनी और हज़ार बत्तियों की रोशनी आप नहीं पैदा हुई, यह शक्ति का भेद उसी ''हम'' का किया हुआ है जिस ने ये बत्तियां बनाईं और जिन से शक्तियों में घटाव-बढ़ाव होता है।

असम्पूर्ण को पूर्ण करने के लिए कार्यकारी शक्ति होती है। एक ही मनुष्य घर के कार्य भी करता है और देश तथा संसार के भी। एक छोटी-सी सीमा में मनुष्य की

1. निराला रचनावली भाग 6, पृ० 56 से 58 तक।
2. निराला रचनावली भाग 6, पृ० 24-25

अणिमा और महिमा, गरिमा और लघिमा सभी शक्तियां अपना-अपना कार्य करती रहती हैं। परन्तु हैं वे अभेद।

एक ही शक्ति व्यक्ति, देश तथा विश्व की शक्ति में सम्मिलित हो सकती है। शक्ति के विकास का एक रूप है, युग-धर्म। इस समय ज्ञान जन्य कर्म ही युगधर्म है। इसी ज्ञान जन्य कर्म के बल पर मुसलमान जीत सके। पश्चिम के लोग भी ज्ञान तथा कर्म दोनों में प्रसरित हैं। वे तारों तथा बेतार के तार से काव्य, साहित्य, व्यवसाय आदि के द्वारा तमाम पृथ्वी को बांधे हुए है। उनका अशरीर-शक्ति प्रवाह एक देश से दूसरे देशों को अविराम बहता जा रहा है। इसलिए हम समाज तथा साहित्य में अपनी बहुत दिनों की भूली हुई, उस शक्ति को आमंत्रित करना चाहते हैं, जो अव्यक्त रूप में सब में व्यक्त है।

शक्ति प्राचीन होते हुए भी नवीन है। न तो उसका ह्रास होता है, न वृद्धि और न ही वह लुप्त होती है। वह उद्भावक भी है और विनाशक भी। शक्ति ही शक्ति से लड़ती है और शक्ति ही शक्ति से हारती है। विभिन्न शास्त्र और आचार्य शक्ति को प्राप्त करने के भिन्न-भिन्न साधन बताते हैं। सभी साधनों का अन्त एक ही है— शक्ति प्राप्ति।

व्यक्ति अपनी आत्मा में शक्ति का पर्यवेक्षण करता है। व्यक्ति ही शक्ति का नियामक है। समस्त सृष्टि के विकास में उसी का अस्तित्व है। निराला के शक्ति-सम्बन्धित निबन्धों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि शक्ति मुख्यतः तीन रूपों में जगत में व्यवहृत होती है—

1. नियामिका शक्ति ;
2. इच्छा शक्ति ; और
3. ज्ञान शक्ति।

नियामिका शक्ति द्वारा संसार की उत्पत्ति, पालन व संहार जैसी क्रियायें सम्पन्न होती हैं जबकि इच्छा शक्ति सम्पूर्ण संसार को क्रियाशील बनाती है और ज्ञान शक्ति द्वारा मनुष्य औदात्य के शिखर पर पहुंचता है।

पूर्व चर्चित अध्यायों में विवेचित विश्व संचालिका शक्ति के विभिन्न रूपों में से मुख्यतः उसके तीन रूप विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के साथ सम्बद्ध हैं। इन तीन रूपों सरस्वती, लक्ष्मी और काली के आधार पर निराला-साहित्य का विश्लेषण अपेक्षित है।

कविवर निराला ने शक्ति के उक्त तीन रूपों के अतिरिक्त सीता, देवी, जननी, मां तथा दुर्गा के रूप की भी उपासना की है। निराला साहित्य का अध्ययन करने पर

यह तथ्य सामने आता है कि उनकी यह उपासना नितान्त मौलिक आधार लिये हुए है।

4·1 **सरस्वती (वीणावादिनी) के रूप में**

सरस्वती ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी है जिसकी पूजा विद्या प्राप्ति के इच्छुक तथा कलाकार विशेष रूप से करते हैं। इस देवी का वाहन हंस है जो सद्वृत्तियों का प्रतीक है। एक हाथ में वीणा तथा दूसरे में पुस्तक धारण किए हैं। इनकी उपासना से अज्ञान का विनाश होकर ज्ञान का प्रकाश फैलता है।

कविवर निराला के अनुसार सरस्वती केवल ज्ञान की अधिष्ठात्री ही नहीं बल्कि समस्त ॠतुओं एवं प्राकृतिक परिवर्तनों से भी सम्बद्ध है। प्रत्येक ॠतु में वह अपने अलग ही रूप में प्रकट होती है। निराला के अनुसार सरस्वती में सुख-दु ख प्रदान करने वाले सभी गुण समाहित हैं। संसार की तामसिक वृत्तियों के विरोध में वही ज्ञान है—

"सकल गुणों की खान, प्राण तुम,
सुख की सृति, दुःख की आकुल कृति,
जग तम की धृति, ज्ञान, ध्यान तुम।"[1]

नतमुख, शवित नयन तथा टेढ़ी भौंहों वाली देवी कमलासन पर विराजित सरस तान में वीणा बजाती हुई स्नेह विह्वल हृदय में समस्त चराचर का दुःख अनुभव करती है—

"वंक भौंह, शवित दृग, नतमुख,
मिला रही निज उर अग जग—दुःख;
— — — —
कमलासन पर बैठ प्रभा—तन,
वीणा-कर करती स्वर साधन।"[2]

"देवी सरस्वती" कविता में कवि ने सरस्वती का रूपांकन व्यापक आधार पर किया है। उनके अनुसार सरस्वती कमल दल पर विराजमान है, जिसने नीले वस्त्र धारण किए हैं, शुभ्रतर ज्योतिमय तन है। दो हाथों में वीणा और दो में पुस्तकें हैं। वीणा के मधुर स्वरों को सुनाता हुआ हंस मानव-मन की सागर लहरों में तैर रहा

1. निराला रचनावली भाग 1, पृ० 224
2. वही , पृ० 224

है। इसी देवी की अराधना आर्यों ने की है। निराला मानते हैं कि ज्ञान की देवी सरस्वती प्राचीन आर्यों की देवी होते हुए भी नित्य नवीन है—

"शुभ्रे कुल रंगों की,
रागों की, शब्दों की,
नित्य नवीना हो,
बन्दित यद्यपि अबदों की।"[1]

सरस्वती वर्षा, शरद, हेमन्त, शीत, बसन्त और ग्रीष्म के रूप में विस्तार पाती है और दुःख से मुरझाये मुखों पर प्रसन्नता लाती है। वर्षा ऋतु में वह अनेक रूपों में प्रकट होती है—

"जग के सर से,
सरस्वती शत-शत रूपों की
निकली क्षिप्र-मन्द-गति,
रंकों की भूपों की,
बीजों से जैसे अंकुर,
अंकुर से पल्लव,
पल्लव से शाखा, शाखा से
द्रुम, द्रुम से नव
पुष्प और फल
ऐसे बढ़े धान खेतों में।"[2]

शरदऋतु में यही सरस्वती वनस्पति के रूप में प्रकट होती है जिसे प्राप्त कर किसान के घर का वातावरण प्रसन्नता से भर जाता है—

हरी भरी खेतों की
सरस्वती लहराई
मगन किसानों के घर
उन्मद बजी बधाई।"[3]

---

1. निराला रचनावली भाग 1, पृ० 183
2. वही भाग 2, पृ० 184
3. वही , पृ० 186

हेमन्त ऋतु में सरस्वती भूमि की हरियाली और आकाश की श्वेत मंजरी है। शीत ऋतु में यही सरस्वती हरीतिमा को छेद देती है। वसन्त ऋतु में फिर नव किसलय-दल के रूप में फूटती है। ग्रीष्म ऋतु में यही कुएं का ठण्डा पानी और वृक्षों की छाया है। सरस्वती ही कवियों की कविता है जो वाल्मीकि, कालिदास, हर्ष, कवि कम्बु, स्वयंभू, तुलसीदास सूरदास, कवीर, ज्ञानदास और दादू में अजस्र वही है।

तुलसीदास को जब ज्ञान प्राप्त होता है तो उसी क्षण उसका 'काम' जलकर भस्म हो जाता है। निराला अच्छी तरह जानते थे जब तक भारतवासियों में ज्ञान का स्रोत नहीं फूटता तब तक दासत्व का कलंक नहीं धुलेगा। अन्ध-विश्वास तथा घिसी-पिटी धारणाओं से भारतीय समाज मुक्त होगा। जब तक व्यक्ति कलुष के बन्धन में बंधे रहेंगे उनके हृदय-तल में प्रेम का संचरण नहीं होगा। ऐसी परिस्थितियों में भारत की स्वतन्त्रता का लक्ष्य सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिए जब भी निराला प्रार्थना में तल्लीन होते हैं तो ज्ञान का प्रकाश ही मांगते हैं तथा विश्व-जनों के हृदयों के प्रेमपूरित हो जाने की कामना करते हैं—

काट अन्ध उर के बन्धन-स्तर
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर;
कलुष-भेद—तम हर प्रकाश भर,
जगमग जग करदे।[1]

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि निराला सरस्वती के विश्व-कल्याणमय रूप के उपासक हैं। विश्व-मानव के मन में व्याप्त अज्ञान का परिष्कार उसी की अनुकम्पा का परिणाम है तथा विश्व के समस्त परिवर्तन भी उसी के इशारे पर होते हैं। सरस्वती के संदर्भ में यही निराला की मौलिक अवधारणा है।

4.2 लक्ष्मी के रूप में

लक्ष्मी विश्व की पालनकर्त्री शक्ति के रूप में उपास्य है। कमल पर विराजित इस देवी के साथ चार हाथी स्वर्ण कलशों में अमृत घट लिए सिंचन कर रहे हैं और इसके हाथ में कमल सुशोभित है। इसके समस्त उपकरण वैभव की कल्पना हैं सिंचन करते हुए हाथी चारों दिशाओं के पोषण का प्रतीक हैं। समस्त वैभव और सम्पत्ति के रूप में लक्ष्मी उपास्य है। विश्व के समस्त सम्प्रदाय किसी न किसी रूप में अराधना अवश्य करते हैं।

महाभारत में हमें यह वर्णन मिलता है कि लक्ष्मी समुद्र मंथन से अमृत घट

1. निराला रचनावली—भाग 1, पृ० 210

सहित उत्पन्न हुई है। निराला भी यद्यपि मंथन से प्राप्त चौदह रत्नों में लक्ष्मी को एक मानते हैं किन्तु वह समुद्र-मंथन को एक रूपक मानते हैं। समुद्र ब्रह्म है। "ब्रह्म-समुद्र को मथने वाले देवता और दैत्य भली बुरी प्रकृति के रूपक हैं। समुद्र से निकले चौदह रत्नों में से लक्ष्मी सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि उसमें दिव्य-भाव तथा ऐश्वर्य के सभी गुण विद्यमान हैं।"[1] यदि किसी समुदाय में दिव्य-भाव तथा ऐश्वर्य आता है तो निश्चित रूप में वह समुदाय शक्तिशाली होकर विकास के मार्ग पर अग्रसर होगा। इस से विहीन समाज पतन को प्राप्त होता है। "तुम्हीं हो शक्ति समुदय की" कविता में निराला ने लक्ष्मी के इसी रूप का वर्णन किया है :—

तुम्हीं हो शक्ति समुदय की
तुम्हीं हो अनुरक्ति संचय की,
× × ×
कथा के स्रोत का उत्थान
तुम से है, पतन तुम से ;
× × ×
तरंगों का विताड़ित भाव,
अर्थ - न्यास-धन तुम से।[2]

समाज का सामूहिक उत्थान, सर्व ऐश्वर्य प्रदायिनी लक्ष्मी की उपासना में निहित है।

4·3 भैरवी (काली) के रूप में

संहारक शक्ति के रूप में संसार में भैरवी या काली की उपासना की जाती है। इस के एक हाथ में खड्ग और एक हाथ में मुंड है। गले में मुण्डों की माला है, मुक्त केश राशि तथा लपलपाती जीभ वाली यह देवी श्याम वर्णा है। इसके स्वरूप की प्रतीकात्मक व्याख्या जनार्दन मिश्र ने इस प्रकार की है। "काली के एक हाथ में सद्यश्छिन्न मुण्ड है, जिससे रक्त टपकता रहता है। यह महापुरुष का मुण्ड है। यही अज्ञान अथवा मोह विष्णु के हिरण्याक्षादि, शिव के त्रिपुरादि, दुर्गा के महिषादि और बुद्ध के मार हैं। विद्या और अविद्या की क्रियाओं के कारण सृष्टि का संकोच और विकास होता है। अविद्या, जीवन के प्रधान उद्देश्य महानन्द, अर्थात् ब्रह्म प्राप्ति का बाधक है। इसलिए साधकों के आत्मदर्शन के लिए इसका सर्वदा शिरच्छेद होता

1. निराला रचनावली भाग 2, (कला और देवियां) पृ० 224
2. वही , पृ० 87

रहता है। सर्वदा रक्तबिन्दुओं का टपकना इसकी निरन्तर क्रियाशीलता का प्रतीक है। देवी के कटिभाग में शवों की माला लटकी हुई है। आधुनिक युग के रामकृष्णादि की तरह महाज्ञानी जीव-मुक्त साधक ही शव हैं, जिन की वासनाओं के नष्ट हो जाने के कारण वे निश्चल वृत्ति वाले रूप को ग्रहण कर चुके हैं। वासनाशून्य उनका हृदय ही काली का श्मशान है, जिसमें वह नृत्य करती हैं। इन्हीं शवों के कर्मबन्धन के प्रतीक उनके हाथ हैं, जिन्हें छिन्न कर करुणामयी मां आत्मसात कर लेती है, जिसमें उसके भक्तों को तत्व प्राप्ति हो।''[1]

निराला भी संहारक शक्ति के रूप में भैरवी (काली) का आह्वान करते हैं। शक्ति का नियामक व्यक्ति है और व्यक्ति का संहारक भाव ही भैरवी है। व्यक्ति की कलुषित प्रवृत्तियां ही असुर हैं जिनका समय-समय पर संहार होना आवश्यक है। तभी तो निराला आसुरी प्रवृत्तियों के विरुद्ध संघर्षरत और इन प्रवृत्तियों के दलन में शक्ति के सक्रिय होने की इच्छा प्रकट करते हुए कहते है :—

''एक बार बस और नाच तू श्यामा
सामान सभी तैयार''[2]

इस संहारक प्रक्रिया में भैरवी अकेली नहीं हैं। निराला भी सम्पूर्ण रूप से सक्रिय हैं तभी तो वह कहते हैं—

लेगी खड्ग और तू खप्पर,
उसमें रूधिर भरूंगा
मैं अपनी अंजलि भर-भर।[3]

स्पष्ट है कि निराला इस तथ्य का प्रतिपादन करना चाहते हैं कि तामसिक प्रवृत्तियों से आच्छादित समाज एवं व्यक्ति-मन का परिष्करण व्यक्ति अपनी ही आंतरिक शक्ति को उद्बोधित करते हुए करता है. तब उस की इस परिष्करण शक्ति का आह्वान ही भैरवी या काली का आह्वान है –

कितने ही हैं असुर, चाहिए कितने तुझ को हार
कर मेखला मुण्ड मालाओं से बन मन अभिरामा—
भैरवी ! भेरी तेरी झंझा
तभी बजेगी मृत्यु लड़ायेगी जब तुम से पंजा।[4]

---

1. भारतीय प्रतीक विद्या, पृ० 195
2. निराला रचनावली भाग 1, पृ० 73
3. वही , पृ० 73
4. वही , पृ० 73

निराला ज्योतिर्मय समाज के निर्माण की कल्पना तो करते हैं किन्तु उससे पूर्व त्रिसंगतियों का विनाश चाहते हैं, तभी तो कहते हैं—

जला दे जीर्ण शीर्ण प्राचीन—[1]

व्यक्ति का संहारक भाव ही भैरवी है। उसकी कलुषित प्रवृत्तियां ही असुर हैं जिन का समय-समय पर संहार होना आवश्यक है। तभी तो निराला उक्त संहारक भाव का आह्वान करता है। निराला का जीवन संघर्षों से भरा रहा है अतः असुरी प्रवृत्तियों के विरुद्ध संघर्ष में वे पूरी तरह सक्रिय दिखाई देते हैं।

4·4 सीता के रूप में

निराला की शक्ति के सीता रूप की मान्यता गोस्वामी तुलसीदास के अनुरूप है। श्री रामचरित मानस में जगदम्बा सीता को शक्ति का मूल स्रोत माना गया है। वे पराशक्ति परमेश्वरी हैं। उनके लीला कटाक्ष से जगत् का निर्माण, पालन और संहार होता है। उन परम चिद्त्मिका शक्ति की उपासना गोस्वामी जी मूलतः तीन रूपों में करते हैं—(1) उद्भवकारिणी, (2) स्थितिकारिणी, (3) संहारकारिणी। उद्भव, स्थिति और संहार त्रिदेव के कर्म हैं। सीता जी में त्रिदेवों के कर्मों का एकत्र संकलन है, अतः सीता जी मूल प्रकृति हैं; किन्तु मूल प्रकृति होकर भी वे क्लेशहारिणी और सर्वश्रेयस्कारी हैं।[2]

निराला ने ''पंचवटी प्रसंग'' में सीता को परम शक्ति सिद्ध करते हुए लक्ष्मण के माध्यम से कहा है—

माता की चरण रेणु मेरी परम शक्ति है...।

उनके अनुसार सीता जगत् की आदि शक्ति हैं जिनके कटाक्ष से सम्पूर्ण जगत् के जीव उत्पन्न और विनष्ट होते हैं—

''जिनके कटाक्ष से करोड़ों शिव-विष्णु-अज
कोटि-कोटि सूर्य-चन्द्र-तारा-ग्रह
कोटि इन्द्र सुरासुर—
जड़ चेतन मिले हुए जीव जग

---

1. निराला रचनावली भाग 1, पृ० 244
2. कल्याण, शक्ति अंक, वर्ष 61, पृ० 299 (1987)

बनते पलते हैं नष्ट
होते हैं अन्त में
सारे ब्रह्मांड के मूल में विराजती हैं
आदि-शक्ति-रूपिणी ।''[1]

सीता ब्रह्मांड का मूल है। सब प्रकार की वासनाओं से मुक्त करने वाली तथा सर्वहितकारी है। गुण और गरिमा की दृष्टि से वे अतुलनीय हैं। इस सन्दर्भ में उनकी तुलना केवल उन्हीं से की जा सकती है—

''नारियों की महिमा—सतियों की गुण-गरिमा में
जिनके समान जिन्हें छोड़ कोई और नहीं।''[2]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि निराला ने सीता में शक्ति के समन्वित रूप को देखा है और समस्त ब्रह्मांड की उत्पत्ति उन्हीं से, पालन तथा विनाश भी उन्हीं से माना है।

4'5 देवी के रूप में

शक्ति के देवी रूप से सम्बन्धित निराला की कविताओं में या तो रहस्यवादी स्वर प्रकट हुआ है या निराला की विवशता तथा प्रार्थना के स्वर उभरे हैं। ''देवि ! कौन वह ?'' कविता में उस शक्ति के प्रति जिज्ञासा प्रकट की गई है कि वह शक्ति कौन है, जो हृदय में बैठ कर जाने क्या गाती है ? जिस के इशारे पर जीवन-चक्र चलता है—

देवि ! कौन वह ?
इंगित पर जो जीवन-चक्र चलाती

देवि के समक्ष ही निराला उस अव्यक्त शक्ति को जानने की जिज्ञासा प्रकट करते हैं जो भावुक जनों की भाषा बन जाती है, निराश व्यक्ति की आशा बन जाती है, भूले हुओं को मार्ग सुझाती है और संकट काल में व्यक्ति को मां बन कर ढाढस बंधाती है—

विषमय देख विश्व को जब मैं कलप-कलप कर रोता
अपने सभी साधनों को मैं पागल बनकर खोता
माता-सी तब मुझे उठाकर स्नेह गोद में लेती
देवि ! कौन वह जो मुझ को विविध सांत्वना देती ?[3]

---

1. निराला रचनावली भाग 1, पृ० 42
2. वही , पृ० 42
3. निराला रचनावली भाग 1, पृ० 63

जब संसार की दुष्प्रवृत्तियों से आक्रांत व्यक्ति पूर्णतया निराश हो जाता है तो उसके ही अन्तर्मन से निरन्तर कोई अव्यक्त शक्ति उसे प्रोत्साहित करती रहती है और व्यक्ति भी उस प्रेरणा को प्राप्त कर उस शक्ति के प्रति आभार प्रदर्शित करने का प्रयास करता है। कविवर निराला भी इस ऋण से मुक्त होने का प्रयास करते हैं किन्तु व्यक्तिगत विवशताओं के कारण वे उस सामग्री को जुटा पाने में सक्षम नहीं हो पाते जिस से वे उऋण हो सकें। देवि को ही सम्बोधित एक अन्य कविता "क्या दूं" में निराला का व्यक्तिगत नैराश्य तथा विवशता प्रकट हुई है। निराला को ऐसा लगता रहा है कि उस की जीवन-भर की साधना असफल है। उसे जीवन में रोदन, वेदना, करुणा और उपहास के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। ऐसी अवस्था में वह देवी के समक्ष क्या अर्पित कर सकता है? अन्य कवियों ने देवी को चुन-चुन कर हार पहनाये हैं किन्तु निराला के पास केवल आंसू हैं, उन्हें वह कैसे अर्पित करे? यह निराला का ही मन है जो निराशा तथा विवशता से हार नहीं मानता। वह शक्ति से प्रार्थना करता है कि वह स्वयं अपना हाथ बढ़ा कर उसके हृदय को प्रकाश से भर दे ताकि वह प्रकाशयुक्त हृदय का संगीत देवी को अर्पित कर सके—

स्वयं बढ़ा दो न तुम करुणा प्रेरित अपने हाथ,
अन्धकार उर को कर दो रवि किरणों का प्लुत प्रात,
पहनो यह माला मां उर में मेरे ये संगीत,
खेलें उज्ज्वल, जिन से प्रतिपल थी जनता भयभीत।[1]

स्पष्ट है कि देवी रूप में शक्ति कल्याणकारिणी है जो व्यक्ति की निराशा तथा विवशता दूर करके उसका हृदय प्रकाशयुक्त करती है।

4·6 जननी के रूप में

शक्ति चूंकि परमसत्ता के नारी-भाव का प्रतीक है इसलिए जन्मदात्री को भी महाशक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। विश्व का प्रत्येक प्राणी इस शक्ति के कल्याणकारी रूप की ही अपेक्षा करता है।

विश्व सृजनात्मक शक्ति को जननी के रूप में सम्बोधित करते निराला को भी इस शक्ति के उक्त रूप का ही प्रत्यक्षीकरण होता है। अपने व्यक्तिगत संघर्षों का चित्रण करते हुए निराला जननी से प्रार्थना करते हैं कि वह भीरुता के पाश को काट दे। आजीवन निराला को उपेक्षा का सामना करना पड़ा था, जिसके कारण उनका हृदय जल रहा है किन्तु इस उपेक्षा का सामना करने के लिए वे जननी की ही शरण में जाते हैं—

1. निराला रचनावली भाग 1, पृ॰ 95

भीरुता के बंधे पाश सब छिन्न हों,
मार्ग के रोध विश्वास से भिन्न हों,
आज्ञा, जननि दिवस निशि करूं, अनुसरण ।[1]

वे उसकी वन्दना करते हुए उसका अवतरण भाव की भूमि पर करना चाहते हैं और सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त कलुषता के निवारण की प्रार्थना करते हैं—

"वन्दन करूं चरण,
जननि, हो भाव की
भूमि पर अवतरण !
विमल पलकें खुले
मोह के पटल से,
देश दशा दिशावधि
कटे करावरण ।"[2]

जननी ही वह शक्ति है जो अमरता प्रदान करने वाली है । अन्धेरे में भटकने वाले भीरू, मलिन और तेजहीन लोग उसके स्वरूप को नहीं समझ सकते—

समझ क्या वे सकेंगे, भीरू-मलिन-मन,
निशाचर-तेजहत रहे जो वन्यजन,
धन्य जीवन कहां,—मात: प्रभातधन,
प्राप्ति को बढ़ें जो गहें तव पद अमर—[3]

विश्व व्याप्त स्पर्धा से चिन्तित निराला के समक्ष इसके अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं रह जाता कि वे जननी के समक्ष प्रार्थनारत हो जाएं और जननी ज्ञान-विहीन इस विश्व को ज्ञान का प्रकाश दिखला कर याचक के प्राणों को सार्थक करे—

सार्थक करो प्राण !
जननि, दु:ख—अवनि को ;
दुरित से दो त्राण ।[4]

1. निराला रचनावली भाग 2, पृ० 229
2. वही भाग 2, पृ० 210
3. वही भाग 1, पृ० 261
4. वही भाग 1, पृ० 229

जननी ही जगत् की गति है वह ही अबोध शिशु को सुमति देने वाली है। अबोध शिशु की विजय पराजय उसी के हाथ में है। स्वच्छ एवं निःस्वार्थ भाव से की गई शक्ति की अराधना विफल नहीं हो सकती। निराला भी शक्ति की इस अनुकम्पा के पात्र बने रहे। उन्हें अपनी प्रार्थना फलीभूत होती प्रतीत हुई। उन्हें व्यक्तियों के हृदय प्रेममय होकर मुक्ति के समीप पहुंचते दिखाई दिए। धरती से मोह, अज्ञान तथा कठिनाइयों से भरी रात्रि के समाप्त होने का अनुभव हुआ और प्रत्येक प्राणी के कंठ से आनन्द की ध्वनि निसृत होती सुनाई पड़ी। इस तरह का भाव-बोध "अनगिनित आ गये शरण में" तथा "जननि मोहमयी तमिस्रा"—आदि कविताओं में व्यक्त हुआ है—

"जननि, मोहमयी तमिस्रा दूर मेरी हो गई है,
विश्व जीवन की विविधता एकता में खो गई है।"[1]

× × ×

"स्नेह से पंक उर
हुए पंकज मधुर
अखिल के कंठ की
उठी आनन्द ध्वनि।"[2]

स्पष्ट है कि शक्ति का जननी रूप अराधक की भीरुता दूर करके अमरता प्रदान करने वाला, उसे गति एवं सुमति देने वाला है एवं कल्याण का स्रोत है।

4·7 मां के रूप में

मां और जननी का कोशीय अर्थ एक है। सामान्य जीवन में भी मां और जननी दोनों शब्दों से एक ही अर्थ लिया जाता है। वस्तुतः जननी शब्द में जन्मदात्री अर्थ मुख्य है और पोषणकर्त्री गोण। यह आवश्यक नहीं है कि जो नारी जन्मदात्री हो वह पोषणकर्त्री भी हो। जब कि मां शब्द में स्नेह और पोषण कर्त्री की महक अधिक है। स्नेह और पोषण-भाव से युक्त किसी भी नारी को मां कहा जा सकता है पर जननी नहीं।

निराला की एक कविता "नर-जीवन के स्वार्थ सकल" में मां साधारण मां न होकर भारत मां है। जिस के लिए कवि अपने सभी स्वार्थ और श्रम से संचित सभी फल न्योछावर करने के लिए तैयार है। भारत मां को दासता के बन्धन से मुक्त कराने के लिए वह अपने प्राणों की आहुति देने का संकल्प करता है—

---

1. निराला रचनावली भाग 2, पृ० 86
2. वही भाग 1, पृ० 225

"क्लेद युक्त अपना तन दूंगा,
मुक्त करूंगा तुझे अटल,
तेरे चरणों पर देकर बलि,
सकल श्रेय-श्रम-संचित फल।"[1]

मां सदैव कल्याणकारिणी रही है। मां के रूप में शक्ति से प्रार्थना है कि वह सारे विश्व को ज्योर्तिमय कर दे। यह शक्ति जगत् के सभी प्राणियों में उदारता और एकता की भावना भर दे। समाज में उच्च और नीच वर्गों का भेद मिट जाए। अनेक मार्गों से होते हुए व्यक्ति एक ही लक्ष्य पर पहुंचे—

"सकल कर्मों में एक उदार
भावना का कर दे संचार

× × ×

सकल मार्गों से चलकर एक
लक्ष्य पर पहुंचे लोग अनेक।"[2]

निराला ने सभी मनुष्यों को समभाव से देखते हुए साम्यवादी विचारधारा का प्रतिपादन भी उक्त पंक्तियों में सहज ही किया है।

अज्ञान के नरक में पड़े हुए विश्व के लिए मां ही ज्ञानदायिनी है। व्यक्ति का मन अनेक कुप्रवृतियों के कारण जर्जर हो चुका है। ऐसे में व्यक्ति-मन के उद्धार की प्रार्थना करते हुए निराला कहते हैं—

"विपुल दिशावधि शून्य वर्गजन,
व्याधि-शयन जर्जर मानव-मन,
ज्ञान-गगन से निर्जर जीवन,
करुणा करो उतारो।"[3]

मां के रूप में शक्ति शोषण का अन्त करने वाली, कल्याणकारी, वर्ग-भेद मिटाने वाली तथा ज्ञानदायिनी है। उसका एक रूप भारत मां का है।

---

1. निराला रचनावली भाग 1, पृ० 2८9
2. वही , पृ० 243
1. निराला रचनावली भाग 2, पृ० 393

4·8 दुर्गा बनाम राष्ट्रशक्ति :

पौराणिक आख्यान भी इस बात के साक्षी हैं कि जब-जब आसुरी प्रवृत्तियां जगत् पर हावी हुई हैं देवताओं के शक्ति आह्‌वान पर शक्ति ने दुर्गा के रूप में अवतीर्ण होकर संसार को आसुरी शक्तियों से मुक्त कराया क्योंकि यह शक्ति सम्पत्तिबल, बुद्धिबल एवं बाहुबल तीनों का समन्वित रूप है। कोई भी व्यक्ति उक्त तीनों में से किसी एक क्षेत्र में निपुणता तो प्राप्त कर सकता है किन्तु एक व्यक्ति के लिए तीनों को प्राप्त करना बहुत कठिन है। इसीलिए दुर्गा शक्ति का नितान्त कष्टसाध्य रूप है। यही संसार की कारण स्वरूपा अर्थात् सृजन, पालन और संहार की हेतु हैं और इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया तीनों का संचालन करने वाली महाशक्ति हैं। उक्त कथन की पुष्टि जनार्दन मिश्र के निम्न कथन से होती है—"मनुष्य मात्र की प्रथम आवश्यकता भोजन है। इसका विकसित रूप व्यक्तिगत सम्पत्, प्रौढ़ रूप राष्ट्र सम्पत् और विराट् रूप महालक्ष्मी है। इसकी रक्षा के लिए क्रमशः उसी परिमाण में व्यक्तिगत, राष्ट्रीय और विराट् रूप में बल चाहिए नहीं तो गदहे गेहूं चर जायेंगे। बल के भी तीन रूप हैं—व्यक्तिगत शक्ति, सुसंगठित समूह शक्ति और विराट् व महाकाली शक्ति। सम्पत्ति और बल के समायोग से पशुशक्ति अर्थात् मनुष्य का शारीरिक आवश्यकताओं वाला पशु रूप पूर्ण हो जाता है। मनुष्य और पशु दोनों समान रूप से इसका उपयोग करते हैं। शारीरिक बल में श्रेष्ठ मनुष्य और पशुबलहीन का सर्वस्व अपहरण कर आत्मसात कर लेते हैं। इतने में ही अपने को आबद्ध रखने वाला मनुष्य राक्षस हो जाता है। (रावण, कंसादि ऐसे ही पुरुष थे)। मनुष्यत्व और देवत्व के लिए, इन शक्तियों के अतिरिक्त विवेक की आवश्यकता होती है। इसका व्यस्तरूप व्यक्तिगत विद्वता और ज्ञान, समस्त रूप विद्या-विलासियों और ज्ञानियों का समाज और विराट्रूप महा सरस्वती हैं। मानव और मानवता को परमोत्कृष्ट रूप देने के लिए ही उस एकामहाशक्ति की, महालक्ष्मी, महाकाली और महासरस्वती के रूप में उपासना की जाती है।[1]

दस भुजाओं वाली यह देवी सिंह पर सवार है। इन के एक ओर लक्ष्मी और गणेश हैं तथा दूसरी ओर सरस्वती और कार्तिकेय हैं। सामूहिक रूप में निहित कल्याण ही शिव भाव है। निराला द्वारा "राम की शक्ति-पूजा" में अन्ततः राम को दुर्गा के उक्त रूप के दर्शन करवाने के पीछे भी यही तथ्य निहित रहा है—

देखा राम ने—सामने श्री दुर्गा, भास्वर
वामपद असुर स्कन्ध पर, रहा दक्षिण हरिपर

1. जनार्दन मिश्र—भारतीय प्रतीक विद्या, पृ० 177

ज्योतिमय रूप, हस्तदश विविध अस्त्र सज्जित
मंद स्मित मुख लख हुई विश्व की श्री लज्जित
हैं दक्षिण में लक्ष्मी, सरस्वती वाम भाग
दक्षिण गणेश कार्तिक बायें रण रंग राग
मस्तक पर शंकर, पदपद्मों पर श्रद्धा भार।[1]

निराला ने दुर्गा के रूप में जिस शक्ति का आह्वान किया है वह राष्ट्र शक्ति के प्रतीकात्मक रूप में है। यह तथ्य सर्वविदित है कि कोई भी साहित्यकार युगीन परिवेश की उपेक्षा कर किसी भी सक्षम कृति की सृजना नहीं कर सकता। उसके भाव परिवेश की भूमि में से ही प्रस्फुटित होते हैं और अन्ततः अपनी गन्ध से परिवेश को ही प्रभावित करते हैं। निराला के सन्दर्भ में भी उक्त तथ्य सत्य सिद्ध हुआ है।

तत्कालीन सांस्कृतिक पतनशीलता ने उनके व्यक्तित्व को झकझोर दिया। राष्ट्रीय चेतना का सम्पूर्ण प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर भी पड़ा। तत्कालीन छायावादी साहित्य की कल्पनाशीलता को आधार बनाते हुए आलोचकों ने यद्यपि इस बात को सिद्ध करने का भरसक प्रयास किया है कि छायावादी कविता राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा से पूर्णतया अलग है और इस युग का कवि देश की परिस्थितियों से अनभिज्ञ अपने ही काल्पनिक जगत् में लीन रहा है। किन्तु निराला का साहित्य अपवाद है। "उसमें पराधीन भारत का "आक्रोश" भी है और तथाकथित स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् के घोर असन्तोष की कटु व्यंजना भी। उसमें प्रथम जागृति के समय के सांस्कृतिक आंदोलनों की व्यापक छाप भी अंकित हैं और युग-युग से प्रपीड़ित, प्रवंचित, सर्वहारा की भैरव हुंकार भी, जो आज की विषम स्थिति को विद्रूप करती हुई चल रही है।"[2]

तत्कालीन ह्रासशील परिस्थितियों के विरोध में राष्ट्रीयतावाद का उदय ही अभीष्ट था। इसके पीछे मुख्य धारणा अंग्रेज़ी शासन से मुक्त होने की ही थी और यह मुक्ति तभी सम्भव थी जब राष्ट्रीय एकता के मंच पर सम्पूर्ण 'राष्ट्रशक्ति" एकीकृत हो।

जहां एक ओर युगीन परिवेश विसंगत परिस्थितियों से आक्रांत था वहीं दूसरी ओर निराला का अपना जीवन भी समाज में उपेक्षनीय रहा। व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों ऋणों से उऋण होना कवि के लिए आवश्यक था। "राम की शक्ति

1. निराला रचनावली, भाग 1 पृ० 319
2. डॉ० विश्वम्बर नाथ उपाध्याय—निराला का साहित्य और साधना, पृ० 19

पूजा'' ने कवि के उक्त अभीष्ट को सिद्ध किया। इस कृति में एक ओर राष्ट्रीयता का स्वर बुलन्द हुआ है तो दूसरी ओर कवि का वैयक्तिक विक्षोभ भी अभिव्यक्त हुआ है। राम के रूप में स्वयं कवि अपनी ही मनःस्थिति का अंकन करते हुए कहता है—

धिक् जीवन जो पाता ही आया विरोध
धिक साधन, जिसके लिए सदा ही किया शोध।[1]

शक्ति द्वारा कमल चुराए जाने पर राम व्यथित हो उठते हैं क्योंकि ''यह कोई साधारण छल नहीं था। छले गए राम की कराह के भीतर निराला के उस अन्तर्व्यथितत्व की कराह थी जिस पर निरन्तर भारी चोटें पड़ी थीं। यह कराह राष्ट्र के सामाजिक व्यक्तित्व की थी क्योंकि वह भी राष्ट्रीय आंदोलनों में हर उस घड़ी में छला गया था जब दुश्मन पर विजय करीब होती थी।''[2]

प्रत्येक युग में शक्ति उपास्य रही है किन्तु परिवेश और परिस्थितियों के अनुरूप उस का आह्वान अराधकों ने भिन्न-भिन्न रूपों में किया है और उसे समय और समाज की मांग के अनुरूप ही प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति दी है। देव समाज में साम्राज्यवाद के प्रतीक महिषासुर के आतंक से आतकित देवताओं ने भी अपने समय में संयुक्त रूप से देवी की मौलिक कल्पना दुर्गा के रूप में की थी। जब तक वे विभाजित रूप से महिषासुर का सामना करते रहे, उसे पराजित न कर सके। किन्तु संयुक्त रूप से प्रयास करने पर शक्ति प्रकट हुई और देवताओं द्वारा प्रदत्त अस्त्र-शस्त्रों से ही उसने महिषासुर का वध किया।

कविवर निराला ने जब यह अनुभव किया कि राष्ट्रीय शक्ति के सम्बल समस्त परम्परागत अस्त्र-शस्त्र निरर्थक सिद्ध हो रहे हैं तो उन्होंने उस राष्ट्र-शक्ति को उद्बोधित करने का प्रयास किया जो व्यक्ति के अन्तर्मन में निहित है और सामूहिक स्तर पर राष्ट्रीय-उत्थान का हेतु है।

''राम की शक्ति पूजा'' में राम-रावण युद्ध हो रहा है। महाशक्ति रावण से आमन्त्रण पाकर उसके पक्ष में है। राम के समस्त बाण प्रभावहीन होकर उस महाशक्ति में विलीन होते जा रहे हैं। राम चिन्तित हैं क्योंकि उन्हें आशंका है कि कहीं असुरों से वे पराजित न हो जाएं और जानकी—उद्धार न हो सके। चिन्तित राम को देखकर हनुमान जो स्वयं शक्ति का एक अंश है उस महाशक्ति से लोहा लेने आकाश में जा पहुंचता है। शक्ति शिव की मन्त्रणा पर अंजनि रूप में हनुमान को लौटा देती देती है। विभीषण राम के समक्ष शक्ति द्वारा रावण की सहायता का भेद खोलते हैं।

1. निराला रचनावली, पृ० 318
2. डॉ० शम्भूनाथ सिंह—मिथक और आधुनिक कविता, पृ० 160

उद्वेलित राम की समस्या के समाधान हेतु जाम्बवान राम को शक्ति की मौलिक कल्पना करने की मन्त्रणा देते हैं। राम शक्ति की मौलिक कल्पना कर उस की अराधना करते हुए एक सौ आठ कमल अर्पित करते हैं किन्तु अन्तिम कमल शक्ति द्वारा चुरा लिया जाता है और राम पुनः सशंकित हो उठते हैं। उन की समझ में नहीं आता कि देवी अधर्म का साथ क्यों दे रही है किन्तु जैसे ही राम कमल के स्थान पर अपना नेत्र चढ़ाने के लिए उद्यत होते हैं शक्ति राम के पूर्ण समर्पण को देख कर उनका हाथ थाम लेती है और विजय का आशीर्वाद देती है।

जाम्बवान द्वारा दिया गया सन्देश इस बात को सिद्ध करता है कि शत्रु पर विजय प्राप्त करने से पूर्व राष्ट्रीय शक्ति का एकीकृत होना आवश्यक है। "राम की शक्ति पूजा" में शक्ति भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती है। कहीं वह पार्वती के रूप में, कहीं अंजना का रूप धारण करती है, कहीं शतवायु वेग बल के रूप में हनुमान में निहित है, कहीं राम द्वारा सिद्ध होकर राम में लीन हो जाती है, तो कहीं वह राष्ट्र शक्ति का रूप धारण करती है। यह शक्ति राम-रावण युद्ध के आरम्भ में रावण के पक्ष में है, बाद में राम द्वारा सिद्ध कर लिए जाने पर यही शक्ति राम के पक्ष में उतरती हुई उन्हें विजयी घोषित करती है।

रावण के पक्ष में शक्ति एक विराट काया के रूप में उभरती है जो समस्त आकाश में विस्तीर्ण है। राम के समस्त ज्योतिर्मय अस्त्र इस काया में लीन होकर बुझ जाते हैं। शक्ति के दृष्टिपात करते ही राम के हाथ बंध जाते हैं—

फिर देखी भीमा मूर्ति आज रण देखी जो
अच्छादित किए हुए सम्मुख समग्र नभ को
ज्योतिर्मय अस्त्र सकल बुझ-बुझ कर हुए क्षीण
पा महानिलय उस तन में क्षण में हुए लीन

— — —

यह रहा शक्ति का खेल समर शंकर, शंकर
करता में योजित बार-बार शर-निकर-निशित

— — —

वे शर आज हो गए रण में श्रीहत खण्डित

— — —

पश्चात् देखने लगीं मुझे बंध गए हस्त
फिर खिचा न धनु मुक्त ज्यों बंध मैं हुआ त्रस्त ।[1]

हनुमान अतुल बल के स्वामी हैं और शक्ति के ही एक रूप में प्रकट हुए हैं। रावण के समक्ष युद्ध में हुई हार से व्याकुल राम के अश्रु देखकर हनुमान अपने पिता से प्राप्त उनचास पवनों के बल पर सागर का जल वाष्प रूप में पवन में मिला, तेज बादलों का वज्र बनाकर शिव के निवास स्थान की ओर प्रस्थान करते हैं—

"ये अश्रु राम के", आते ही मन में विचार,
उद्वेल हो उठा शक्ति-खेल-सागर अपार,
हो श्वसित पवन-उनचास-पिता-पक्ष से तुमुल,
एकत्र वक्ष पर बहा वाष्प को उड़ा अतुल,

— — —

वज्रांङ्ग तेजघन बना पवन को, महाकाश
पहुंचा एकादश रूद्र क्षुब्ध कर अट्टहास ।"[2]

हनुमान का संघर्ष शिव की शक्ति से है। हनुमान स्वयं भी शक्ति का अंश हैं। "वे शिव जी के वीर्य से उत्पन्न हुए थे। पार्वती के गर्भ में स्थित शिशु हनुमान को योग शक्ति से शिव ने पवन को दिया। पवन ने उस को अंजनि के गर्भ में रख दिया और हनुमान का जन्म अंजनि के गर्भ से हुआ।"[3] यहां शक्ति का संघर्ष शक्ति से है। हनुमान की अमर्यादित और संयमहीन शक्ति को केवल बुद्धिबल से नियन्त्रित किया जा सकता है।

शिव की शक्ति अंजना का रूप धारण कर हनुमान को यथार्थ ज्ञान देकर मर्यादा और संयम में बांधती है—

"लख महानाश शिव क्षण भर हुए चंचल
श्यामा के पदतल भारहरण हर मन्द्र स्वर
बोले—"सम्वरो देवि", निज तेज, नहीं वानर

— — —

1. निराला रचनावली भाग 1, पृ० 312, 315, 316
2. निराला रचनावली भाग 1, पृ० 313
3. डॉ० हरदेव बाहरी—प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक कोश, पृ० 439

विद्या का ले आश्रय इस मन को दो प्रबोध
झुक जाएगा कपि, निश्चय होगा दूर रोध।"[1]

शिव की मन्त्रणा के अनुरूप शक्ति अंजना रूप धारण कर हनुमान के क्रोध को यह तर्क देकर शांत करती है कि आकाश में शिव का निवास है। शिव चूंकि हनुमान के अराध्य राम के भी अराध्य हैं अतः उन्हें ग्रसना उसके लिए उचित नहीं है—

सहसा नभ में अंजना रूप का हुआ उदय

— — —

यह महाकाश है जहां वास शिव का निर्मल
पूजते जिन्हें श्री राम उसे ग्रसने को चल
क्या नहीं कर रहे तुम अनर्थ सोचो मन में।[2]

परिणामतः हनुमान शांत होकर शक्ति द्वारा सुझाए गए कर्त्तव्य का पालन करने में निमग्न हो जाते हैं।

रावण के पक्ष में शक्ति को देख कर व्यथित हुए राम को जाम्बवान दृढ़ अराधना के बल पर शक्ति-साधना का सन्देश देकर शक्ति की मौलिक कल्पना करने के लिए कहते हैं—

अराधन का दृढ़ अराधन से दो उत्तर
तुम वरो विजय संयत प्राणों से प्राणों पर,
रावण अशुद्ध होकर भी यदि कर सका त्रस्त
तो निश्चय तुम हो सिद्ध करोगे उसे ध्वस्त
शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन
छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो रघुनन्दन।[3]

जाम्बवान का उक्त कथन राष्ट्र की विशृंखलित शक्ति को संयोजित कर उसके नव गठन का सन्देश है क्योंकि जब तक शक्ति संयोजित न हो युद्ध करना निरर्थक है। यह शक्ति मनुष्य के भीतर ही है और इसी शरीर में सम्पूर्ण ब्रह्मांड समाहित है। अपने से बाहर किसी प्रकार की सिद्धि अथवा परमार्थ ढूंढना व्यर्थ है। हिन्दू तन्त्रवादियों ने शिव और शक्ति का निवास शरीर के अन्दर माना है। शिव का वास

1. निराला रचनावली भाग 1, पृ० 313
2. निराला रचनावली भाग 1, पृ० 314
3. वही , पृ० 316

सहस्र चक्र में है और शक्ति मूलाधार में अवस्थित है। शक्ति कुण्डलिनी के आकार में कुण्डली मारे बैठी रहती है। साधना के द्वारा इस कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर सहस्रार चक्र की ओर प्रेरित किया जाता है। साधना की सफलता शिव और शक्ति, पुरुष और स्त्री तत्व के संयोग पर निर्भर करती है। राम भी प्रसुप्त शक्ति को उद्‌बोधित करने के लिए हठयोग का सहारा लेते हैं किन्तु इस से पूर्व वह शक्ति के मौलिक स्वरूप की कल्पना इस प्रकार करते हैं--

''देखो, बंधुवर सामने स्थित जो यह भूधर
शोभित शत-हरित-गुल्म-तृण से श्यामल सुन्दर,
पार्वती कल्पना है इसकी, मकरन्द बिन्दु,
गरजता चरण प्रांत पर, वह नहीं सिंधु;
दशदिक समस्त हैं हस्त, और देखो ऊपर,
अम्बर में हुए दिगम्बर अर्चित शशि शेखर।''[1]

राम शक्ति के उक्त रूप की कल्पना प्रकृति में करते हैं। भूधर पार्वती की कल्पना है, भूधर के चरणों में गरजते सिंधु में सिंह की कल्पना है, दसों दिशाओं में शक्ति के दस हाथों की कल्पना है और आकाश शिव की कल्पना है। इस प्रकार शिव और शक्ति की कल्पना समस्त भारत की कल्पना है। यहां शक्ति राष्ट्र शक्ति का प्रतिरूप है जो व्यक्ति और व्यक्तियों का सम्मिलित रूप राष्ट्र, शारीरिक रूप-बल, सम्पत्ति बल और ज्ञान बल सिंह सदृश है। शक्ति को सिद्ध करने से पूर्व राम सिंह भाव से शक्ति के अभिनन्दन की बात करते हैं—

बोले आवेग रहित स्वर से विश्वास-स्थित—
'मातः, दश भुजा विश्व ज्योति में हूं आश्रित ;
हो बिद्ध शक्ति से है खल महिषासुर मर्दित
जनरन्जन-चरण-कमल-तल, धन्य सिंह गर्जित !
यह, यह मेरा प्रतीक, मातः समझा इंगितः
मैं सिंह, इसी भाव से करूंगा अभिनन्दित'।[2]

सिंह भाव से उनका स्पष्ट संकेत बाहु बल, सम्पत्ति बल और ज्ञान बल से है। ''राष्ट्र को पशुबल (कार्तिकेय) और सम्पत्ति बल (लक्ष्मी) और ज्ञान बल (सरस्वती)

---

1. निराला रचनावली भाग 1, पृ० 317
2. वही , पृ० 316

अवश्य चाहिए, किन्तु बुद्धिहीन बल, सम्पत्ति और ज्ञान निरर्थक ही नहीं वरन् आत्म-संहार के लिए प्रबल अस्त्र सिद्ध होते हैं। इसलिए मनुष्यता के आदिदेव, बुद्धि के महाकाय (गणपति) की आवश्यकता है। जिन की विशाल बुद्धि (शरीर) के भार के नीचे सभी विघ्न (चूहे) विवश रहते हैं। सभी दिशाओं में फैली हुई राष्ट्रशक्ति ही, राष्ट्र की दो, चार, आठ, दस, सहस्र और अनन्त असंख्य भुजाएं हैं।''[1]

राष्ट्र में उपलब्ध समस्त अस्त्र-शस्त्र दुर्गा के अस्त्र-शस्त्र हैं। राष्ट्र की सम्मिलित शक्ति ही असुरों का वध करती है।

राम इसी असुर संहारिणी दुर्गा की अराधना एक हठयोगी की भांति करते हैं। प्रतिपल अपनी इष्ट दुर्गा का स्मरण करते हुए अपनी समाधि को स्थिर कर लेते हैं। चक्र से चक्र की ओर बढ़ते हुए वे अपना ध्यान कल्पित देवी के चरण युग्म रूपी त्रिकुटी में केन्द्रित कर आज्ञा चक्र पर पहुंच कर ऊपर की ओर उठते हैं और सहस्रार कमल को भेदने में सफल हो जाते हैं।

> "क्रम-क्रम से हुए पार राघव के पंच दिवस,
> चक्र से चक्र मन-चढ़ता गया उर्ध्व निरलस;
> कर-जप पूरा कर एक चढ़ाते इन्दीवर,
> निज पुरश्चरण इस भांति रहे हैं पूरा कर;
>
> — — —
>
> आठवां दिवस मन ध्यान युक्त चढ़ता ऊपर
> कर गया अतिक्रम ब्रह्मा-हरि-शंकर का स्तर।''[2]

किन्तु इस से पूर्व शक्ति द्वारा अराधना के निमित्त रखे गये अन्तिम कमल को चुरा लिया जाना साधक (राम) के मार्ग में आने वाली विकट बाधा है। राम एक सफल साधक की भांति अपने नयन-समर्पण द्वारा योग की चरम सीमा पर पहुंच जाते हैं और पूर्ण समर्पण के बल पर शक्ति से साक्षात्कार करते हुए विजय का वरदान पाते हैं। क्योंकि "अस्तित्व की रक्षा तभी सम्भव है जब उसे समूचा का समूचा युद्ध का रूप दे दिया जाए। आधा मन और शरीर से लड़े जाने वाले युद्ध में सिर्फ पराजय निहित है।''[3]

---

1. जनार्दन मिश्र—भारतीय प्रतीकविद्या, पृ० 177
2. निराला रचनावली, भाग 1, पृ० 318
3. शम्भूनाथ सिंह—मिथक और आधुनिक कविता, पृ० 162

स्पष्ट है कि राम के उपर्युक्त समर्पण के परिणाम स्वरूप ही दुर्गा प्रकट होने को बाध्य हुई और विजय का वरदान देते हुए राम के ही वदन में अन्तर्लीन हो गई—

देखा राम ने—सामने श्री दुर्गा, भास्वर
वाम पद असुर-स्कन्ध पर, रहा दक्षिण, हरि पर,
ज्योतिर्मय रूप, हस्तदश विविध अस्त्र सज्जित,
मन्द स्मित मुख लख, हुई विश्व की श्री लज्जित,
हैं दक्षिण में लक्ष्मी, सरस्वती वाम भाग
दक्षिण गणेश, कार्तिक बाएं रण रंग राम
मस्तक पर शंकर ! पदपदमों पर श्रद्धा भार
श्री राघव हुए प्रणत मन्द स्वर बन्दन कर
होगी जय, होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन
कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन ।[1]

स्पष्ट है कि राम की कठिन साधना के उपरांत दुर्गा अर्थात् राष्ट्र-शक्ति अर्थात् राम की शक्ति राम को विजयी घोषित करती है। निराला के लिए राम राष्ट्र का प्रतीक हैं, राम की शक्ति राष्ट्र की शक्ति का प्रतीक है और राम के सहयोगी वानर, रीछ इच्छादि शोषितों और उत्पीड़ितों के प्रतीक हैं। निराला ने इस तथ्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि सामाजिक एवं राजनीतिक अत्याचारों के विरुद्ध जब तक समस्त जन शक्तियां एकीकृत हो कर प्रयास रत नहीं होती तब तक स्वर्णिम भविष्य की कल्पना नहीं की जा सकती। इसी संयुक्त शक्ति के माध्यम से निराला रावण अर्थात् अंग्रेजों की पराजय चाहते हैं और सीता अर्थात् भारत माता की मुक्ति। □

1. निराला रचनावली भाग 1, पृ० 319

उपसंहार

उपसंहार

ईश्वरीय शक्ति की नारी रूप में परिकल्पना ही देवी उपासना का आधार है। सम्पूर्ण संसार में प्रचलित यह शक्ति मातृ रूप में प्रतिष्ठित है। सर्वशक्तिमान चराचर जगत् की उत्पत्ति, पालन एवं संहार का हेतु यही देवी है। इन तीनों शक्तियों का नाम क्रम से सरस्वती, लक्ष्मी और काली रख दिया गया। वास्तव में ये तीनों देवियां एक ही निराकार शक्ति के तीन साकार स्वरूप हैं। मूल रूप से उक्त तीनों शक्तियां ब्रह्मा, विष्णु, महेश की सहायक शक्तियों के रूप में वर्णित हैं। सरस्वती का सम्बन्ध बुद्धि, सम्वेदना और ज्ञान से है, लक्ष्मी से आशय है हर प्रकार की उन्नति, आनन्द और ऐश्वर्य और महाकाली सब को अपने में लीन करने वाली शक्ति है। इन रूपों के अतिरिक्त देवी की उपासना दस महाविद्याओं, सप्तमातृकाओं तथा नव दुर्गा के रूप में सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचलित है। इस के अलावा इक्यावन शक्ति पीठ तथा एक सो आठ देवी धाम भी देवी उपासना के महत्व को दर्शाते हैं।

देवी उपासना को तांत्रिक उपासना की संज्ञा दी गई है। तंत्र-मंत्र द्वारा शक्ति की साधना ही तांत्रिक उपासना कहलाती है। तांत्रिकों ने शिव और शक्ति का अभिन्नत्व स्वीकार किया है। वे मान कर चले हैं कि शक्ति शिव के बिना और शिव शक्ति के विना अधूरे हैं। तांत्रिक उपासना के दो रूप हैं—कौलाचार और वामाचार। कौलाचारी साधक सात्विक ढंग से देवी की अराधना करते हैं जबकि वामाचारी देवी-पूजा में पंचमकारों का प्रयोग करते हैं। शक्ति उपासना में बीजतत्व, यन्त्र चक्र, मंत्र, दीक्षा आदि का ज्ञान आवश्यक है।

देवी पूजा का आरम्भ प्राग्तिहासिक युग में ही हो चुका था और निश्चित रूप से सिन्धु घाटी के लोगों ने मातृका पूजन की परम्परा दी जिसे आगामी युगों ने शक्ति, देवी, माता, भूमि आदि के रूप में स्वीकार किया।

वैदिक काल में इसी मातृ शक्ति की उपासना पृथ्वी या प्रकृति देवी के रूप में होती रही है। पृथ्वी में प्रजनन शक्ति निहित है और कृषि-प्रधान जनसमुदाय होने के नाते वैदिक लोगों के लिए यही पृथ्वी ही उनके पालन का प्रमुख आधार थी। इसी प्रकार महाकाव्यकाल में यह शक्ति-उपासना दुर्गा और सीता के रूप में की गई। इस काल में इन शक्तियों को दिव्य अस्त्रों से सुशोभित चित्रित किया गया।

पौराणिक युग में देवी-उपासना अपने चरमोत्कर्ष पर थी । इस युग के विविध पुराणों में देवी-महात्म्य का विपुल वर्णन है तथा देवी की स्वतन्त्र सत्ता इसी काल में स्वीकृत हुई ।

प्राग्मौर्य युग, कुषाण युग में देवी के विविध रूपों (सप्तमातृका आदि) को स्वीकार किया गया। देवी का महिषासुरमर्दिनी स्वरूप इस युग में विशेष मान्य रहा । इसी परम्परा का विकास गुप्तकाल में हुआ जिसका प्रमाण उपलब्ध पाषाण प्रतिमायें हैं ।

आधुनिक युग में पहुंचकर परम्परा से चली आ रही देवियों का नव संस्कार हुआ जिस के अनुसार दुर्गा, काली सरस्वती इत्यादि शक्तियों को राष्ट्र की सामूहिक शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया ।

देवी पूजा की व्यापकता से मात्र समाज ही प्रभावित नहीं हुआ अपितु समाज का व्यक्त रूप साहित्य भी इस से प्रभावित हुआ । हिन्दी साहित्य के विविध युगों में साहित्यकारों ने देवी की अराधना किसी न किसी रूप में अवश्य की । इस दृष्टि से मध्यकाल सम्पन्नकाल माना जाता है जिस में तुलसी की सीता, सूर की राधा आदि उसी आदि शक्ति के रूप में पूज्य मानी गईं । उत्तरमध्ययुग में गुरु गोबिन्दसिंह द्वारा "चण्डी चरित्र" की रचना की गई । इस कृति में भगवती चण्डी के रूप में देवी के रौद्र रूप का आह्‌वान समाज में फैली विद्रूपताओं के विनाश के लिए किया गया ।

आधुनिक काल में पुनः देवी उपासना का नवोत्थान हुआ । हरिऔध, मैथिली-शरणगुप्त. प्रसाद, पन्त तथा निराला आदि कवियों ने तो देवी के उदात्त स्वरूप की कल्पना की है और उसे विश्व-कल्याण का हेतु स्वीकार किया है ।

निराला बंगाल निवासी थे । बंगाल चूंकि शक्ति उपासना का प्रधान केन्द्र माना जाता है—स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्णपरमहंस, स्वामी सारदानन्द आदि से विशेष रूप से प्रभावित होने के कारण निराला ने शक्ति का व्यापक स्तर पर अध्ययन किया और तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप उस का गहन रूपांकन किया । निराला साहित्य में भी "राम की शक्ति पूजा" विशेष उल्लेखनीय है, जिसमें उन्होंने देवी दुर्गा को प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति दी है और शक्ति के रूप में उन्होंने राष्ट्र की संगठित शक्ति के आह्‌वान का प्रयास करते हुए इस तथ्य का प्रतिपादन भी किया है कि शक्ति मूलतः व्यक्ति के अन्तर्मन में ही निहित है आवश्यकता है उसके उद्‌बोधन की । □

सहायक ग्रन्थ-सूची

क्र० सं०	लेखक	पुस्तक	प्रकाशक
1.	अग्रवाल, वासुदेव शरण	भारतीय कला	पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी-5, 1966
2.	उपाध्याय, विश्वम्बर नाथ	निराला साहित्य और साधना	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, द्वि० सं० 1965
3.	कविराज (डॉ०) गोपीनाथ महामहोपाध्याय)	तांत्रिक वाङ्गमय में शाक्त दृष्टि	बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद, पटना—4
4.	गर्ग आर० एस०	शाक्त प्रतिमाएं	पुरातत्व एवं संग्रहालय, मध्य प्रदेश, भोपाल, प्र० सं० 1980
5.	गुप्त, मैथिली शरण	द्वापर	साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी
6.	गुप्त, मैथिली शरण	यशोधरा	वही
7.	गुप्त, मैथिली शरण	स्वदेश संगीत	वही
8.	(गुरू) गोबिन्दसिंह	दशम ग्रन्थ	शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर (देवनागरी संस्करण)
9.	गोस्वामी, कृष्णदास	चैतन्य चरितामृत	साधना प्रकाशन, कलकत्ता
10.	गोस्वामी, तुलसीदास	रामचरितमानस	गीता प्रेस, गोरखपुर
11.	गोस्वामी, ललितचरण	(श्री) हितचौरासी	वेणु प्रकाशन, वृन्दावन प्र० संस्करण, 1965 ई०
12.	चतुर्वेदी रामस्वरूप	कविता यात्रा : रत्नाकर से रघुवीर सहायक तक	दि मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लि० प्र० सं० 1976

क्र० सं०	लेखक	पुस्तक	प्रकाशक
13.	द्विवेदी, हजारी प्रसाद	नाथ सम्प्रदाय	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
14.	(सम्पादक) नवलकिशोर	निराला रचनावली भाग 1 से 8 तक	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983
15.	पन्त, सुमित्रानन्दन	उत्तरा	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वि० सं० 2012
16.	पन्त, सुमित्रानन्दन	ग्राम्या	भारती भण्डार, इलाहाबाद
17.	पन्त, सुमित्रानन्दन	लोकायतन	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1964
18.	पन्त, सुमित्रानन्दन	वीणा	भारती भण्डार, इलाहाबाद
19.	पन्त, सुमित्रानन्दन	शिल्पी	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1952
20.	पन्त, सुमित्रानन्दन	स्वर्ण किरण	भारती भण्डार, इलाहाबाद तृ० सं० 2020 वि०
21.	पन्त, सुमित्रानन्दन	स्वर्णधूलि	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, तृ० सं० 1965
22.	प्रसाद, जयशंकर	कानन कुसुम	भारती भण्डार, इलाहाबाद छटा सं० 2020 वि०
23.	प्रसाद, जयशंकर	कामायनी	सरस्वती बिहार, दिल्ली
24.	प्रसाद, जयशंकर	चन्द्रगुप्त	भारती भण्डार, इलाहाबाद 11 वां सं० 2015 वि०
25.	भूषण	भूषण ग्रन्थावली	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 2021 वि०
26.	मतिराम	ललित ललाम	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 2021 वि०

क्र० सं०	लेखक	पुस्तक	प्रकाशक
27.	(डॉ०) महीपसिंह	गुरु गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1969
28.	मिश्र, जनार्दन	भारतीय प्रतीक विद्या	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
29.	मिश्र, (पं०) विश्वनाथ प्रसाद	बिहारी	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 2010 वि०
30.	वर्मा, सांवलिया बिहारीलाल	भारत में प्रतीक-पूजा का आरम्भ और विकास	बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, प्र० सं० 1974
31.	वाजपेयी, नन्ददुलारे	सूरसागर	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
32.	शम्भूनाथ सिंह	मिथक और आधुनिक कविता	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्र० सं० 1985
33.	(सम्पादक) शर्मा बी० पी०	पृथ्वीराज रासो (लघु संस्करण)	विश्व भारती प्रकाशन, चण्डीगढ़
34.	शुक्ल (डॉ०) द्विजेन्द्रनाथ	भारतीय वास्तु-शास्त्र-प्रतिमा विज्ञान	वास्तु वाङ्मय प्रकाशन माला, शुल्क कुटी, फैजाबाद रोड, लखनऊ
35.	सुन्दरदास	सुन्दरदास ग्रन्थावली	राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता

संस्कृत ग्रन्थ

1. ऋग्वेद — गीता प्रेस, गोरखपुर
2. देवी भागवत — गीता प्रेस, गोरखपुर
3. महाभारत — गीता प्रेस, गोरखपुर
4. मार्कण्डेय पुराण — गीता प्रेस, गोरखपुर

अंग्रेज़ी-पुस्तकें

1. Aurbindo : Sri Aurobindo on Himself and on the Mother. 1953.
2. Aurbindo : The Synthesis of Yoga, 1955.
3. (Editor) D. C. Sircar : The Shakti cult and Tara, University of Calcutta, 1967.

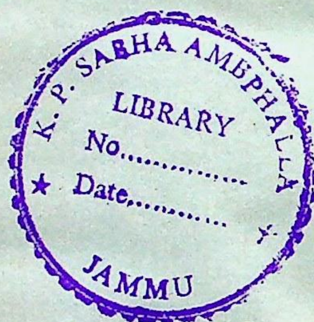
कोश

1. M. A. Canney : An Encyclopeadia of Religion, Nag Publishers, Jawahar Nagar, Delhi, 1976.
2. (डॉ०) हरदेव बाहरी : प्राचीन भारतीय संस्कृति कोश विद्या मन्दिर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988.

पत्रिका

1. कल्याण (शक्ति-उपासना अंक), गीता प्रेस, गोरखपुर, 1987।

———



Akant